Registered with the Registrar of Newspaper for India
R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946
94251-01132

Supported by:
Kisaan Helpline
+91-7415538151

READ FOR ONLINE EDITION
Website: www.krishakbharti.in
E-mail: bhartikrishak75@gmail.com

मध्य भारत कृषक भारती

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली मासिक पत्रिका

ISSN-2582-5976
वर्ष-20 अंक-10 ग्वालियर, जनवरी -2026 मूल्य 30 रुपए

मध्य भारत कृषक भारती के समस्त पाठकों को नववर्ष की हार्दिक शुभकामनाएं

नूतन वर्ष मंगलमय हो

नूतन वर्ष की मंगल बेला, सुख और समृद्धि लाये।
बढ़े मान-सम्मान और धन धान्य संतोषी छाये।।
दो हजार छब्बीस का, हर दिन बहुत प्यारा हो।
साकार करे सुनहरे सपने, पल-पल न्यारा हो।।

दिन दोगुनी, रात चौगुनी प्रगति हो, सार्थक हो अरमान।
सभी स्वस्थ्य हो, सभी निरोगी, सबका हो कल्याण।।
संयुक्त राष्ट्र महासभा ने किया है यह आव्हान।
वर्ष 2026 की आन-बान-शान है महिला किसान।।

"यत्र नारी पूज्यन्ते, तत्र रमन्ते देवता" देववाणी।
सूझ-बूझ की धनी है, महिलाओं की मधुर वाणी।।
पग-पग पर मिले सफलता, पूर्ण हो अभिलाशाएं।
नूतन वर्ष 2026 की सभी को अनंत शुभकामनाएं।।

प्रो. (डॉ.) भागचन्द्र जैन
उपाध्यक्ष, राष्ट्रीय कृषि पत्रकार संघ
(नाज) रायपुर (छ.ग.)

मध्यप्रदेश: अंतर्राष्ट्रीय वन मेले का आयोजन

जनजातीय कार्य मंत्री डॉ. कुंवर विजय शाह ने अंतर्राष्ट्रीय वन मेले 2025 में वन उत्पादों का अवलोकन किया।

छत्तीसगढ़: आधुनिक नर्सरी विकास की दिशा में अहम पहल

छत्तीसगढ़ वन विकास निगम द्वारा हाइड्रोपोनिक्स तकनीक का उपयोग पौधों के उत्पादन और प्रशिक्षण के लिए किया जा रहा है, ताकि मिट्टी रहित खेती को बढ़ावा मिले।

श्री गणेशाय नमः
श्री सॉवलिया सेठ
किसान कृषि सेवा केन्द्र
Gmail
Kisankrishisevakendramanasa@gmail.com
7692967419
9109726855
हमारी सेवाएँ:-
सभी तरह के उन्नत बीज- अश्वगंधा, अकरकरा, कलौंजी, तुलसी, केमोमाईल, चिया, जीरा, हल्दी, सौप, सर्पगंधा, तरबूज एवं सभी प्रकार की सब्जिया एवं फुलो के बीज, कृषि दवाईया, उर्वरक, वर्मी कम्पोस्ट यूनिट, अजोला यूनिट, किसान के घर पर तैयार वर्मी कम्पोस्ट, जैविक खेती से संबंधित सभी कार्य, सभी फसलो के फोरोमेन ट्रेप, सोयाबीन स्पाईरल ग्रेडर, कृषि एवं किसान संबंधित समस्त प्रकार के ऑर्डर की विश्वास पूर्ण, पूर्ति करना हमारा परम ध्येय है।
कृषि विभाग एवं उद्यानिकी विभाग संबंधित सभी योजनाओं के पंजियन किए जाते है।
उन्नत किस्म के नर्सरी के पौधे, मासिक, साप्ताहिक कृषि साहित्य सभी प्रकार की पत्रिका उपलब्ध है।
स्थान- पुराना टॉकीज, एल.आई.सी. ऑफिस के सामने, रामपुरा रोड़ मनासा जिला नीमच (म.प्र.) 458110

कृषि दर्शन
खेत-खलिहान का राजा
1988
थ्रेशर 35HP हापर मॉडल
हडम्बा कटर थ्रेशर
ऑटोफीडिंग थ्रेशर
मक्का थ्रेशर
मिनी कम्बाईन थ्रेशर
रेज बेड सिड ड्रील
स्प्रे पंप 500 लि. गन बूम मॉडल
मोटर लिफ्टर
सुदर्शन इण्डस्ट्रीज
विक्रम नगर मौलाना, बड़नगर, जिला-उज्जैन-456771 (म.प्र.)
फोन : 07367-262235, मोबा.: 09827078882
वेब : www.krishidarshan.com, ई-मेल : krishidarshan@rediffmail.com

सरसों का संकट

एक समय था जब पंजाब के ग्रामीण अंचलों में खिले हुए सरसों के खेत मौसमी बयार में बदलाव के प्रतीक हुआ करते थे। तमाम सांस्कृतिक प्रतिमानों में पीले सरसों के खेतों को मौसम के गौरव के रूप में चित्रित किया जाता रहा है। लेकिन वक्त की विडंबना है कि यह अब यह सुनहरी फसल सिमटती नजर आ रही है। जिसके परिणाम स्वरूप आज देश में हम खाद्य तेलों की पर्याप्त आपूर्ति नहीं कर पा रहे हैं। यही वजह है कि भारत लगातार आयातित खाद्य तेलों पर अत्यधिक निर्भर होता जा रहा है। निश्चय ही यह स्थिति व्यवस्था के कई विरोधाभासों को भी उजागर कर रही है। यह तथ्य चौंकाता है कि पंजाब में सरसों के उत्पादन में इसलिए गिरावट नहीं आ रही है कि फसल उत्पादन क्षमता में किसी तरह की कोई कमी आई है। बल्कि यह स्थिति इसलिए है कि सरकारों की नीतियां प्रोत्साहन देने वाली साबित नहीं हो रही हैं। वहीं बाजार के रुझान इसे आर्थिक रूप से किसानों के हितों के प्रतिकूल बना रहे हैं। कहने को तो अकसर दलील दी जाती है कि पंजाब के किसानी से जुड़े संकटों का समाधान फसलों के विविधीकरण में निहित है। लेकिन विडंबना यह है कि विविधीकरण के दावों के बावजूद, सरसों के उत्पादक किसान प्रोत्साहन न मिल पाने से निराश हैं। दरअसल, किसान कम और अनिश्चित मुनाफे के चलते सरसों की फसल उगाने से गुरेज करता है। उसके सामने बड़ी चुनौती यह भी है कि सरसों की फसल की सरकारी खरीद सीमित मात्रा में होती है। जिसके चलते किसानों को खून-पसीने की उपज को बेचने के लिये व्यापारियों के रहमोकरम पर निर्भर रहना पड़ता है। वे अपने मोटे मुनाफे के लिये किसान के हितों की अनदेखी करने से नहीं चूकते। यही वजह है कि गेहूं और धान के विपरीत, जिनकी खरीद सुनिश्चित है और उनके लिये मजबूत विपणन प्रणाली मौजूद है, सरसों की फसल किसानों को बाजार की अस्थिरता के प्रति संवेदनशील बना देती है। फलतः किसानों को आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है।

दरअसल, इस संकट का दूसरा पहलू यह भी है कि पंजाब आज अपनी खाद्य तेल आवश्यकताओं का एक मामूली हिस्सा ही स्थानीय उत्पादन से पूरा करता है। इससे हमारी महंगे आयात पर निर्भरता और भी बढ़ जाती है। तिलहन की खेती को बढ़ावा देना अक्सर राष्ट्रीय प्राथमिकता के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। सही मायनों में सरकारी तंत्र द्वारा सरसों की उपज की खरीद में सहायता और न्यायसंगत मूल्य दिलाने के वायदे खोखले साबित होने के कारण सरसों की पैदावार का रकबा बढ़ता नहीं है। जिस दिन किसानों को तंत्र की नीतियों पर भरोसा पैदा हो जाएगा, उस दिन निश्चय ही किसान प्रोत्साहन के चलते तर्कसंगत प्रतिक्रिया देंगे। निर्विवाद रूप से पंजाब की धरती में सरसों उत्पादन की स्थितियों से जुड़ी संभावनाएं पर्याप्त हैं। यकीनी तौर पर यह धान की तुलना में कम पानी की खपत करती है। साथ ही भूजल संकट को कम करने के उद्देश्य से फसल विविधीकरण से जुड़ी रणनीतियों में स्वाभाविक रूप से फिट बैठती है। लेकिन हमें इस हकीकत को स्वीकार करना चाहिए कि पंजाब में विविधीकरण के लक्ष्य केवल नैतिक प्रोत्साहन से हासिल नहीं किए जा सकते। निश्चित रूप से इसके लिए अनिवार्य शर्त है कि बाजार की संरचना में जरूरत के अनुरूप बदलाव प्राथमिकता के आधार पर किए जाएं। सही मायनों में सरसों के लिये एमएसपी समर्थित खरीद और स्थानीय प्रसंस्करण, भंडारण और मूल्य श्रृंखलाओं में निवेश किसानों को सरसों की खेती अपनाने के लिये प्रोत्साहित कर सकता है।

मध्यप्रदेश फूलों के उत्पादन में देश में तीसरे स्थान पर

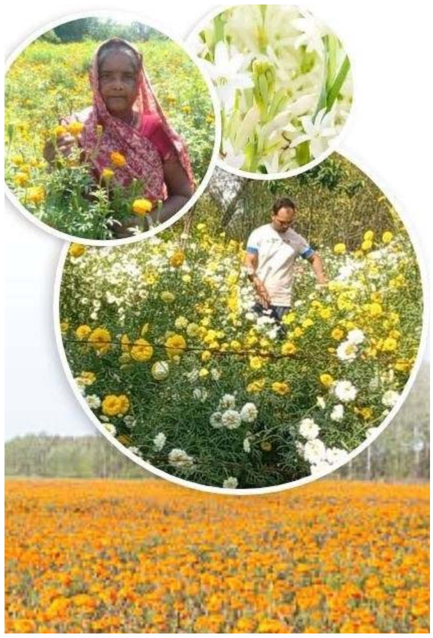

मध्यप्रदेश के उत्पादित फूलों की मांग देश के महानगरों के साथ विदेशों में भी बढ़ी है। गुना जिले के गुलाब की महक जयपुर, दिल्ली, मुम्बई के बाद अब पेरिस और लंदन में भी पहुँच रही है। शिक्षित युवाओं के साथ गांव में रहने वाले ग्रामीण किसान भी फूलों के उत्पादन की ओर आकर्षित हुए है। राजधानी भोपाल की ग्राम पंचायत बरखेड़ा बोदर की रहने वाली श्रीमती लक्ष्मीबाई कुशवाह धान, गेहू, सोयबीन की खेती छोड़कर गुलाब, जरबेरा और गेंदा के फूल का उत्पादन कर, हर महीने तीन से चार लाख रूपये कमा रही है। ऐसे अनेक उदाहरण है, जिनसे प्रदेश में फूलों का उत्पादन बढ़ा है।

सदस्यता ग्रहण करने एवं विज्ञापन प्रकाशन हेतु निम्न प्रतिनिधियों से सम्पर्क करें

छिंदवाड़ा (म.प्र.)	मुंगावली (म.प्र.)	उड़ीसा
रामप्रकाश रघुवंशी	भगवानदास चौबे	समीर रंजन नायक
98272-78063	96854-88453	70422-31678
***	बलिया (उ.प्र.)	***
	आर.एन. चौबे-94535-77732	
नरसिंहपुर (म.प्र.)	पश्चिम बंगाल	हापुड़ (उ.प्र.)
नवीन शुक्ला: 89894-36330	राजेश नायक-98831-57482	मयंक गौड़: 83848-66823

Online मंगाएं साहित्य

मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में अत्यंत लोकप्रिय हिन्दी मासिक समाचार पत्रिका **मध्य भारत कृषक भारती** द्वारा प्रकाशित कृषि साहित्य अब आप ऑनलाइन भी खरीद सकते हैं। हमारी वेबसाइट **www.krishakbharti.in** पर जाकर **Purchase** को क्लिक करके ऑनलाइन ऑर्डर कर सकते हैं।

वैज्ञानिक/लेखकों के लिए सूचना

प्रत्येक माह की 20 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को प्रिंट एडिशन में स्वीकार किया जाता है तथा 21 से 30 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को डिजीटल एडिशन में सम्मिलित किया जाना संभव हो सकेगा। लेख में मोबाइल नम्बर होना अनिवार्य है। -संपादक

मध्य भारत कृषक भारती में प्रकाशित पाठ्य सामग्री में व्यक्त विचार वैज्ञानिकों/लेखकों के हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। किसी त्रुटि शंका या समाधान के लिये वैज्ञानिकों/लेखकों के पते प्रकाशित किये जाते हैं जिस पर संपर्क किया जा सकता है। सभी प्रकार के विवादों के लिये न्याय क्षेत्र ग्वालियर होगा। सभी पद मानसेवी हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in

मध्य भारत कृषक भारती

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

सदस्यता एवं विज्ञापन के लिए सम्पर्क करें
0751-4070802

▪ वार्षिक ₹ 400 ▪ द्विवार्षिक ₹ 750
▪ पंचवार्षिक ₹ 1800

▪ वर्ष 20 ▪ अंक 10 ग्वालियर, जनवरी 2026 मूल्य ₹ 30/-

: सम्पादक मण्डल :

प्रधान सम्पादक

राजू गुर्जर (MJC)

94251-01132

94245-22090

❖

प्रसार/मार्केटिंग टीम

डी.के. बरार

91791-85002, 70247-93010

महेश अहिरवार: 94251-48365

: तकनीकी मार्गदर्शन/वैज्ञानिकगण :

डॉ. व्ही.एस. तोमर (पूर्व कुलपति)
राजमाता विजयाराजे सिंधिया
कृषि विश्वविद्यालय
***
डॉ. अर्पिता श्रीवास्तव
(Assistant Professor)
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन
महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)
***
डॉ. आर.के.एस. तोमर
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि वि.वि.
ग्वालियर (म.प्र.)
***
डॉ. अनिल कुमार सिंह (उद्यान वैज्ञानिक)
कृषि विज्ञान केन्द्र, पीपराकोठी (पूर्वी चम्पारण),
डॉ.रा.प्र.के.कृ.वि.वि.,पूसा, समस्तीपुर

प्रो. (डॉ.) के. आर. मौर्य
पूर्व कुलपति, राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय
पूसा (बिहार), एवं महात्मा ज्योति राव फूले
विश्वविद्यालय जयपुर (राजस्थान)
***
डॉ. रंजु कुमारी (स.प्रा. सह कनीय वैज्ञानिक)
पादप प्रजनन एवं अनुवांशिकी विभाग, नालन्दा
उद्यान महाविद्यालय, नूरसराय (नालन्दा), बिहार
कृषि वि.वि.,सबौर, भागलपुर
***
डॉ. भागचन्द जैन
प्राध्यापक एवं प्रचार अधिकारी
कृषि महाविद्यालय, इंदिरा गांधी कृषि
विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)
***
डॉ. विश्वनाथ सिंह कंसाना
कृषि विज्ञान केन्द्र दतिया (म.प्र.)

डॉ. विनीता सिंह, अध्यक्ष
अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
AKS विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)
***
तपस्या तिवारी पीएचडी शोधार्थी, मृदा विज्ञान और
कृषि रसायन विज्ञान विभाग, चंद्रशेखर आज़ाद कृषि
और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)
***
बसंत कुमार दादरवाल
इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर साइंस बनारस
हिन्दू यूनिवर्सिटी वाराणसी (उ.प्र.)
***
श्रीमती रिया ठाकुर (वैज्ञानिक उद्यानिकी)
कृषि विज्ञान केन्द्र, चंदनगांव, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
मोबाइल: 9907279542
***
डॉ. मोहब्बत सिंह जमरा (असिस्टेंट प्रोफेसर)
पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन
महाविद्यालय, महू, (म.प्र.)

अंदर के पन्नों पर

मध्यप्रदेश/छत्तीसगढ़

- अजोला: उत्तम जैव उर्वरक सह प्रोटीन युक्त पशु आहार 10
- बकरी पालन में टीकाकरण एवं आवश्यक सावधानियाँ 11
- डीएपी रासायनिक खाद के कई वैकल्पिक स्रोत 12
- रेसेल : ग्वालियर क्षेत्र के लिए एक उभरती हुई संभावनाशील फसल 14
- जनजातीय किसानों में लैंगिक आधारित जलवायु संवेदनशीलता.. 15
- कृषि नीतियां और युवा रोजगार: कृषि क्षेत्र की संभावनाएं 16
- स्वच्छ दूध उत्पादन कैसे करें 17
- पशु स्वास्थ्य पर माइकोटॉक्सिन का गंभीर खतरा: एक विस्तृत विश्लेषण 18
- भारत में प्राकृतिक खेती: 2025 में नवीनतम.. 19
- कृषि वस्तुओं में मूल्य अस्थिरता: कारण .. 20
- गायों में भ्रूण स्थानांतरण प्रौद्योगिकी 21
- मटका खाद: प्राकृतिक खेती की कुंजी 22
- जीएसटी 2.0 कृषि के लिए एक बड़ा वरदान 23
- बन्दरों का आतंक: कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था.. 24
- छत्तीसगढ़ में पुष्प उद्योग की स्थिति एवं विकास 25
- पशु चिकित्सा में नियमित रूप.. 27

उत्तर प्रदेश

- लौकी की वैज्ञानिक एवं उन्नत खेती 28
- अश्वगंधा की खेती 29
- कृषि में रोबोटिक्स : भारतीय खेती का तकनीकी.. 30
- प्राकृतिक खेती एवं इसके प्रमुख घटक 31
- खरीफ मौसम में उत्तर भारत में जैविक धान की खेती:.. 32
- भारत में कृषि उत्पादन बढ़ाने में ड्रोन का योगदान 33
- मशरूम उत्पादन तकनीक 34
- चने की फसल को रोगों से बचाना: .. 35
- गैर-पारंपरिक चारा स्रोत: पशुधन पोषण मे एक नई पहल 36
- करेला की वैज्ञानिक एवं उन्नत खेती 37
- 'कृषि में बायोमल्चिंग: प्लास्टिक का हरित विकल्प' 38
- डक्टलेस थ्रेसर मशीन:.. 39
- संरक्षण कृषि: भविष्य की टिकाऊ खेती 40
- कार्बन पृथक्करण: विधियां और जलवायु परिवर्तन 41

राजस्थान

- WTO समझौतों का भारतीय कृषि नीति पर प्रभाव 42
- समेकित कृषि प्रणाली- सफलता की नई राह-सफलता की कहानी 43
- फसल में लगने वाले रोगों का जैविक प्रबंधन 44
- खेती में रासायनिक उर्वरकों के अंधाधुन प्रयोग .. 45
- कृषि विस्तार सेवाओं में नवाचार और चुनौतियां 46

हरियाणा

- उच्च वायु गुणवत्ता सूचकांक (ए.क्यू.आई.) .. 47

बिहार

- गेहूँ के प्रमुख कीटों एवं रोगों का समेकित प्रबंधन 48
- सब्जियों में पोस्ट-हार्वेस्ट हानियों का मूल्यांकन.. 49
- मुख्य पोषक तत्व के रूप में पोटाश .. 50
- सब्जियों में पोस्ट-हार्वेस्ट हानियों का मूल्यांकन.. 51

पंजाब

- दुग्ध पशुओं में गर्भपात : किसानों के लिए सरल मार्गदर्शन 52

बदनूर की राहुल हाइटेक नर्सरी बनी आधुनिक खेती का शानदार उदाहरण

मध्यप्रदेश के छिंदवाड़ा जिले के विकासखंड मोहखेड़ के ग्राम बदनूर के उन्नतशील किसान राहुल देशमुख द्वारा संचालित राहुल हाइटेक नर्सरी जिले में आधुनिक खेती का मजबूत उदाहरण बन रही है। नर्सरी में अत्याधुनिक ग्राफ्टिंग सिस्टम, पौध तैयार करने की तकनीक और हाई-टेक मशीनों की वजह से यहां तैयार हो रहे पौधे अपनी गुणवत्ता के लिए दूरङ्कदूर तक प्रसिद्ध हो रहे हैं। नर्सरी का ढांचा, कार्यप्रणाली और उन्नत तकनीक देखकर किसान और विशेषज्ञ सभी प्रभावित हो रहे हैं। बीते दिनों इस नर्सरी में ग्राफ्टिंग फेन-शेड और पॉलीहाउस का भी शुभारंभ उप संचालक कृषि श्री जितेंद्र कुमार सिंह तथा उप संचालक उद्यानिकी श्री एम.एल. उइके की मौजूदगी में किया गया है। इस अवसर पर छिंदवाड़ा सहित लगभग सात जिलों और महाराष्ट्र से आए करीब 2000 उन्नतशील किसान भी शामिल हुए थे। इन सभी किसानों ने राहुल हाईटेक नर्सरी में ग्राफ्टेड सब्जी पौधों की तकनीक, पौधों की गुणवत्ता, नर्सरी में लगी हाई-टेक मशीनरी और उन्नत उत्पादन प्रणाली को नजदीक से देखा। साथ ही 19 सीड एवं पेस्टिसाइड कंपनियों ने स्टॉल लगाकर अपने उत्पादों और नई तकनीकों की जानकारी प्रदान की।

कृषकों द्वारा नरवाई प्रबंधन यंत्र का उपयोग करने पर हुई समय श्रम तथा लागत में बचत

नरवाई प्रबंधन यंत्र का उपयोग करने के लिए किसानों को जागरूक किया जा रहा है। इसीक्रम में ग्राम खिरिया विकासखंड टीकमगढ़ के कृषक नाथुराम अहिरवार के खेत में नरवाई प्रबंधन यंत्र सुपर सीडर से मटर की बुबाई की गई, जिससे उन्हें जुताई व बोनी का कार्य एक साथ होने से समय श्रम तथा लागत में बचत हुई। साथ ही इससे मिट्टी की उर्वरता क्षमता भी बढ़ी है। श्री नाथुराम द्वारा इस यंत्र का क्रय ई-कृषि यंत्र अनुदान योजना अंतर्गत किया गया, जिसमें उन्हें यंत्र की कीमत का 50 प्रतिशत (120000 रूपये) अनुदान कृषि अभियांत्रिकी विभाग से प्राप्त हुआ है। जिले में अब तक वर्ष 2025-26 में 4 कृषकों द्वारा इस यंत्र का अनुदान पर क्रय किया गया है, जिससे जिले में सुपर सीडर कृषि यंत्र की उपलब्धता बढ़कर 5 हो चुकी है। जो भी कृषक बंधु इस यंत्र को अनुदान पर क्रय करना चाहते है, वे विभाग के पोर्टल mpdage.gov.in में ऑनलाइन आवेदन कर सकते है।

एनएसएस स्पेशल कैंप जागरूकता

रीवा। कॉलेज ऑफ़ एग्रीकल्चर रीवा के अधिष्ठाता डा एसके त्रिपाठी के मार्गदर्शन में एनएसएस यूनिट के स्पेशल कैंप के छठे दिन, सरकारी हायर सेकेंडरी स्कूल खैरा में छात्रों के बीच एनएसएस के उद्देश्यों के बारे में जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किया गया। जागरूकता कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डॉ. राहुल सिंह परिहार, ईटीआई को-ट्रेनर, बथुला यूनिवर्सिटी, भोपाल थे। डॉ. परिहार ने भारत के एनएसएस के मुख्य उद्देश्य के बारे में बताया कि यह सेवा के माध्यम से शिक्षा है। उन्होंने यह भी बताया कि इसका उद्देश्य छात्र स्वयंसेवकों, व्यक्तित्व और सामाजिक परिणामों को समुदाय की ज़रूरतों के अनुसार विकसित करना और छात्रों में आत्मनिर्भरता, नेतृत्व और नागरिक जिम्मेदारी की भावना को बढ़ावा देना है

शीतला कृषि सेवा केन्द्र

बंटी सिंह गुर्जर (बामौर वाले)

99267-31867, 83055-69923

खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक एवं खेरिज विक्रेता

हमारे यहां धान, गेहूँ, सोयाबीन, सरसों, तिली एवं सब्जियों के बीज, खाद एवं उच्चकोटि की कीटनाशक दवाईयां उचित मूल्य पर मिलती है।

पता: पशु अस्पताल के सामने, भितरवार रोड, डबरा ग्वालियर (म.प्र.)

01/205-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

'नमो ड्रोन दीदी' योजना से बदल रहा कृषक महिलाओं का जीवन

मध्यप्रदेश के आगर-मालवा जिले के ग्राम थड़ौदा की रीना चंदेल की जिंदगी को योजना से एक नई दिशा मिली है। रीना बताती हैं कि वे अब किसानों के खेतों में नैनो यूरिया और नैनो पेस्टिसाइड का ड्रोन से छिड़काव करती हैं। इसके बदले उन्हें प्रति हेक्टेयर की दर से भुगतान प्राप्त होता है। केवल एक कृषि सीजन में वे 40,000 रूपये से अधिक की आमदनी कर लेती हैं और सालभर में यह आय 1 लाख रूपये तक पहुंच जाती है। साथ ही, वे किसानों को नैनो टेक्नोलॉजी के उपयोग के प्रति जागरूक भी कर रही हैं।

सक्सेस स्टोरी

मध्यप्रदेश में महिला सशक्तिकरण के लिए केन्द्र और राज्य सरकार की ओर से कई योजनाएं चलाई जा रही हैं. महिलाएं इन योजनाओं का लाभ उठाकर आगे भी बढ़ रही है। दरअसल मप्र के ग्वालियर के मोहना और इसके आस-पास के गांवों में इन दिनों ड्रोन दीदी निधा की चर्चा में बनी हुई हैं। उन्होंने चंद महीनों में साढ़े तीन लाख रु. आय हासिल की है। सरकार की ओर से चलाई जा रही नमो ड्रोन दीदी योजना से निधा का जीवन बदल गया है।

पारंपरिक खेती छोड़ी, आधुनिक तरीके से पैदा कर रहे टमाटर

मध्यप्रदेश के खरगोन जिले के दिग्विजय सिंह सोलंकी ने एमकॉम तक पढ़ाई की हुई है. शुरुआत में उनकी दो जॉब लगी थी, उसके बाद उन्होंने पुलिस विभाग में 8 साल सर्विस की, इनकी पैतृक जमीन खरगोन के ग्राम देवली में है. शुरू से ही उनको खेती किसानी का शौक रहा था, जिसके चलते कुछ नया करने की चाह में वो खेती में ही आ गए. नौकरी छोड़ कर नई तकनीक से टमाटर की खेती शुरू कर दी. जिससे वो अब हर साल लाखों रुपये की कमाई कर रहे हैं. उन किसानों के लिए प्रेरणास्रोत बने हुए हैं, जो पारंपरिक खेती के मोह को त्याग नहीं पाते. इस बार सोलंकी ने 14 एकड़ में टमाटर लगाया है. जिसमें 7 एकड़ में हाइब्रिड वैरायटी है और 7 एकड़ में देसी. सोलंकी बताते हैं कि शुरुआत में पुश्तैनी जमीन पर परंपरागत खेती से शुरुआत की, जिसमें हम कपास की खेती और सोयाबीन की खेती करते थे.

12/2025-26

छत्तीसगढ़: धमतरी जिले को जल्द मिलेगा हाईटेक नर्सरी, किसान प्रशिक्षण केंद्र और फूड प्रोसेसिंग इनक्यूबेशन सेंटर का लाभ

छत्तीसगढ़ के धमतरी जिले के किसानों और उद्यानिकी क्षेत्र के लिए यह गर्व का विषय है कि कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र कुरूद चर्रा परिसर में भूमि पर हाईटेक नर्सरी एवं किसान प्रशिक्षण केंद्र स्थापित किया जा रहा है। स्वीकृति हेतु प्रस्ताव भेजा गया है । इसके लिए सहायक संचालक लाइवली हुड शैलेन्द्र गुप्ता, जिले के विभिन्न महाविद्यालयों से कैरियर काउंसिलिंग प्रभारीगणों के साथ हृद्धुञ्ञ रायपुर तथा इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय रायपुर के इनक्युबेशन सेंटर में विजिट कर वहाँ की कार्यप्रणाली, स्टार्टअप, इनोवेशन आईडिया को सही दिशा प्रदान करने के संबंध में पूर्ण जानकारी ली ।

मुंडली में किसान संगोष्ठी का आयोजन

रतलाम। कृषि विज्ञान केंद्र कालूखेड़ा एवं उद्यानिकी महाविद्यालय मंदसौर के संयुक्त तत्वाधान में रावे कार्यक्रम के तहत ग्राम मुण्डली में रबी फसलों पर किसान संगोष्ठी का आयोजन किया गया। उद्यानिकी महाविद्यालय के अधिष्ठाता डॉ आई. एस. तोमर ने कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए कृषकों को उद्यानिकी फसलों के महत्व के बारे में बताते हुए कृषकों को नवीनतम तकनीकी के माध्यम से खेती करने के बारें में बताते हुए सिंचाई जल प्रबंधन, ड्रिप एवं स्प्रिंकलर सिंचाई पद्धति के प्रयोग के बारे में विस्तार से जानकारी प्रदान की, जिससे किसान कम पानी में भी अधिक उत्पादन लेकर आर्थिक रूप से सक्षम बन सकें। कार्यक्रम प्रभारी डॉ एच. पी. सिंह ने मिट्टी परीक्षण के महत्व के बारे में बताते हुए खेत से मिट्टी का सैंपल लेने का तरीका बताया। कृषि विज्ञान केंद्र कालूखेड़ा के वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रमुख डॉ सर्वेश त्रिपाठी ने कृषकों को प्राकृतिक खेती के विषय में जानकारी प्रदान करते हुए उसके महत्व को समझाया। डॉ ज्ञानेंद्र प्रताप तिवारी, विषय वस्तु विशेषज्ञ (पौध संरक्षण) ने लहसुन में लगने वाले कीट एवं बीमारियों की रोकथाम के बारे बताते हुए कृषकों की समस्याओं का समाधान किया। कार्यक्रम का संचालन डॉ. बरखा शर्मा, विषय वस्तु विशेषज्ञ (गृह विज्ञान) ने किया एवं आभार डॉ शिशराम जाखड, कार्यक्रम सहायक (मृदा विज्ञान) ने व्यक्त किया। इस अवसर पर केवीके के डॉ चतरा राम कांटवा विषय वस्तु विशेषज्ञ (शस्य विज्ञान) एवं डॉ रोहताष सिंह भदौरिया, विषय वस्तु विशेषज्ञ (उद्यानिकी) ने भी अपने - अपने विषय से संबंधित जानकारी कृषको को प्रदान की । इस अवसर पर संगोष्ठी में रावे छात्रों ने भी भागीदारी करते हुए ज्ञान अर्जित किया एवं कृषकों के समक्ष अपने अनुभव साझा किए।

केवीके बड़गांव, बालाघाट में किया गया किसान दिवस का आयोजन

बालाघाट। राणा हनुमान सिंह कृषि विज्ञान केन्द्र, बड़गांव, बालाघाट में किसान दिवस का आयोजन किया गया। कार्यक्रम में वैदिक अगाल इफको प्रबंधक बालाघाट, श्रीमति रूचिक वैष्य विकासखण्ड समन्वयक मध्यप्रदेष जन अभियान परिषद् भोपाल, भागचंद मण्डलवार, नवांकुर संस्था प्रमुख किरनापुर, श्री जितेन्द्र मातरे, श्री जगदीष पांचे एवं जिले के 223 से अधिक किसान उपस्थित रहें। उक्त वर्चुअल कार्यक्रम में केंद्रीय ग्रामीण विकास मंत्री माननीय श्री शिवराज सिंह चौहान ने ''विकसित भारत - जी राम जी'' योजना के विषय में बताया कि प्रस्तावित कानून का उद्देश्य विकसित भारत 2047 के राष्ट्रीय विजन के अनुरूप एक नया ग्रामीण विकास ढांचा स्थापित करना है।

जैन बीज भण्डार एवं पशु आहार

मैन बाजार, चीनोर रोड,
छीमक जिला-ग्वालियर (म.प्र.)

प्रो. मुकेश जैन, मोबाइल: 9977638510

04/2025-26

जल जीवन मिशन का कार्य निर्धारित लक्ष्य वर्ष 2028 के पहले मार्च-2027 में होगा पूर्ण

भोपाल। मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने कहा कि प्रदेश के प्रत्येक नागरिक को गुणवत्तापूर्ण और सुरक्षित पेयजल उपलब्ध कराना सरकार की सर्वोच्च प्राथमिकता है। उन्होंने इस बात पर विशेष जोर दिया कि जल स्रोतों में सीवरेज का दूषित जल किसी भी स्थिति में नहीं मिले और इसके लिए प्रभावी कार्ययोजना बनाई जाए। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि केंद्र सरकार द्वारा जल जीवन मिशन को दिसंबर 2028 तक पूरा करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है, लेकिन मध्यप्रदेश इस कार्य को मार्च 2027 तक पूर्ण कर राष्ट्रीय स्तर पर मिसाल पेश करेगा। उन्होंने कहा कि मिशन के संचालन-संधारण के लिए मजबूत व्यवस्था सुनिश्चित की जाए, ताकि किसी भी परिस्थिति में जल आपूर्ति प्रभावित न हो। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने यह भी कहा कि जल जीवन मिशन में उत्कृष्ट कार्य करने वाले सरपंचों और महिला समूहों को राज्य, संभाग, जिला और ग्राम स्तर पर सम्मानित किया जाए। विगत 10 वर्षों में जिन ग्रामों को जल संकट का सामना करना पड़ा है, उनकी रिपोर्ट तैयार कर उन क्षेत्रों में जल प्रदाय सुनिश्चित करने के निर्देश दिए। उन्होंने कहा कि जल की उपलब्धता के अनुसार जल वितरण का समय तय किया जाए, जिससे नियमित आपूर्ति सुनिश्चित हो सके। मिशन के प्रभाव का विश्लेषण अटल बिहारी वाजपेयी सुशासन एवं नीति विश्लेषण संस्थान के माध्यम से कराए जाने की बात भी कही। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि गाँव के ऐसे ट्यूबवेल की सूची बनवाएं, जिनमें हमेशा पानी रहता हो और ट्यूबवेल मालिक सेवाभावी हों। जरूरत पड़ने पर इनके ट्यूबवेल से पानी की आपूर्ति कराने का प्रयास करें। लोक स्वास्थ्य यांत्रिकी मंत्री श्रीमती संपतिया उइके ने जल जीवन मिशन के कार्यों के समुचित संचालन-संधारण के लिये प्रभावी योजना बनाने की बात कही। बैठक में मुख्य सचिव अनुराग जैन, अपर मुख्य सचिव मुख्यमंत्री नीरज मण्डलोई, अपर मुख्य सचिव वित्त श्री मनीष रस्तोगी और प्रबंध संचालक जल निगम के.वी.एस. चौधरी भी उपस्थित थे।

केवीके अम्बाला द्वारा फसल अवशेष प्रबंधन पर किया जा रहा जागरूक

अंबाला। कृषि विज्ञान केन्द्र अम्बाला की टीम गावं गांव जाकर किसानों से धान की पराली न जलाने का आग्रह कर रही है, क्योंकि इससे पर्यावरण, वायु गुणवत्ता और मृदा स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। फसल अवशेष प्रबंधन एक प्रक्रिया है जिसमें खेत में बची हुई फसल के अवशेषों को सही तरीके से नष्ट या पुनः उपयोग किया जाता है। जब फसल की कटाई की जाती है, तो उसके बाद खेत में पुआल, तने, पत्तियां, और अन्य अवशेष बच जाते हैं। इन अवशेषों को बिना सही प्रबंधन के छोड़ देने से खासकर जब इन्हें जलाने से पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है, जैसे कि मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट, जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार गैसों का उत्सर्जन, और वायु प्रदूषण।

साथ ही आधुनिक कृषि यंत्रो का उपयोग करने के लिए जागरूकता प्रदान कर रही है जैसे की सुपर स्ट्रा मैनेजमेन्ट यंत्र का उपयोग खेती में कटाई के बाद खेत में बचे हुए पुआल (straw) को प्रबंधित करने के लिए किया जाता है। इस यंत्र का मुख्य उद्देश्य पुआल को खेत में समान रूप से फैलाना और छोटे टुकड़ों में काटना होता है ताकि इसे मिट्टी में मिलाया जा सके। इससे मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार होता है, और फसल के अवशेष जलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, जो पर्यावरण के लिए हानिकारक हो सकता है।सुपर स्ट्रा मैनेजमेंट यंत्र का उपयोग ट्रैक्टर के साथ किया जाता है, और इसे विशेष रूप से धान और गेहूं की कटाई के बाद बचे हुए पुआल को प्रबंधित करने के लिए डिज़ाइन किया गया है। यह यंत्र पुआल को कटाई के बाद खेत में ही प्रभावी ढंग से निपटाने में मदद करता है।

मल्चर एक कृषि उपकरण है जो ट्रैक्टर से जुड़ा होता है और खेतों में उपयोग किया जाता है। यह छोटे पौधों, पेड़ों और झाड़ियों को काटने के लिए उपयोग किया जाता है। मल्चर का उपयोग करने के प्रमुख लाभों में से एक फसल अवशेषों को हटाने या काटने की क्षमता है, जो मिट्टी के बेहतर स्वास्थ्य को बढ़ावा देता है और फसल उत्पादकता में सुधार करता है।

श्रब मास्टर (Shrub Master) एक प्रकार का कृषि उपकरण है जिसका उपयोग खेतों, बगीचों और जंगलों में झाड़ियों, छोटे पेड़ों, और घास को काटने और साफ करने के लिए किया जाता है।

01/2025-26

केवीके शहडोल में दक्षता विकास प्रशिक्षण

शहडोल। कृषि विज्ञान केंद्र शहडोल एवं किसान कल्याण तथा कृषि विकास विभाग (आत्मा परियोजना) शहडोल के सन्युक्त तत्वाधान में ग्राम ओढकी एवं सगरा में दक्षता विकास प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया गया। जिसमे केंद्र के वरिष्ठ वैज्ञानिक सह प्रमुख डा. मृगेंद्र सिंह ने बागवानी किसानों को कहा कि इस समय बेर के बाग में प्रबंधन करना जरूरी है। सफेद चूर्णी रोग यह बेर का फफूंद से होने वाला मुख्य एवं बहुत ही घातक रोग है। इस रोग का प्रकोप अक्टूबर-नवंबर में शुरू होता है। इस रोग से फसल को काफी हानि पहुंचती है। इस रोग के प्रकोप से पत्तियों व फलों की सतह पर सफेद पाउडर की परत दिखाई देती है। मुख्यतः व्यतः ये चूर्णी फफूंद फलों की सतह पर ज्यादा आता है। जिससे फलों का विकास रुक जाता है। अगर किसानों ने समय रहते प्रबंधन नहीं किया तो 80ः तक फल को नुकसान हो सकता है। इस बीमारी के शुरुआत होते ही पौधों पर कवकनाशी केराथेन 1 एमएल प्रति लीटर या 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में सल्फेक्स के घोल का छिड़काव पौधों पर करें। 15 दिन के अंतर पर यही छिड़काव दोहराएं। केंद्र के वैज्ञानिक डॉ. ब्रजकिशोर प्रजापति ने बताया कि आज के दौर में प्रायः किसान फल एवं सब्जियों के उत्पादन में रासायनिक कीटनाशक का प्रयोग काफी जोर शोर से कर रहे हैं। फल एवं सब्जियों पर छिड़के जाने वाले रासायनिक कीटनाशक से जहां फल व सब्जियां लगातार प्रदूषित हो रही है। वहीं इन सब्जियों का सेवन मानव शरीर को भी व्यापक स्तर पर नुकसान पहुंचा रहा है। देश के किसान फल एवं सब्जियों के फसल पर रासायनिक कीटनाशक की जगह नीम और तुलसी से बनाए गए जैव कीटनाशक का प्रयोग कर उच्च स्तरीय व गुणवत्तापूर्ण फल एवं सब्जियों का उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। उन्होंने बताया कि नीम के अर्क का उपयोग कृषि में कीटों और रोग के प्रबंधन के अलावा पौधों को पोषक तत्वों की आपूर्ति करने में किया जाता है। नीम और तुलसी किसानों के लिए हर हाल में सुरक्षित है। किसान इससे बने कीटनाशकों का प्रयोग पूरे फसल चक्र के दौरान एवं आईपीएम की रणनीतियों के अनुकूल कर सकते हैं। जैव कीटनाशक पर्यावरण की दृष्टि से भी काफी सुरक्षित हैं। किसान सबसे पहले नीम के 1 किलो हरे पत्तियों को पीसकर एक बाल्टी में रखें गए 5 लीटर पानी में डालकर उसे 12 घंटे के लिए छोड़ दे। इसके बाद किसान पत्तियों को निचोड़े और तरल को एकत्र कर लें। पत्तियों के अति छोटे टुकड़े को तरल से हटाने के लिए किसान रसोई की छलनी या मलमल के कपड़े का उपयोग कर उसे छान लें। इस प्रक्रिया के बाद किसान लगभग 20 ग्राम साबुन या कोई भी स्टीकर यानी गोंद को पानी में घुलने तक मिलाएं। इन सभी प्रक्रियाओं को पूरा करने के बाद किसान का जैव कीटनाशक तैयार हो जाता हैं।

कृषि महाविद्यालय ग्वालियर की छात्राओं का वेटेरिनरी पॉलीक्लीनिक दतिया पर भ्रमण

दतिया। कृषि महाविद्यालय ग्वालियर से कृषि विज्ञान केन्द्र दतिया में ग्रामीण कृषि कार्य अनुभव हेतु आये हुये 16 छात्राओं द्वारा वेटेरिनरी पॉलीक्लीनिक दतिया पर केन्द्र के वैज्ञानिक पशु चिकित्सा डॉ. रूपेश जैन के मार्गदर्शन में भ्रमण कराया गया। पॉलीक्लीनिक पर पदस्थ वरिष्ठ पशु चिकित्सक डॉ. व्ही.के. श्रीवास्तव एवं डॉ. गजेन्द्र धाकड़ द्वारा पॉलीक्लीनिक की प्रतिदिन की गतिविधियों से छात्राओं को अवगत कराया भ्रमण के दौरान डॉ. श्रीवास्तव द्वारा पशुओं का प्राथमिक उपचार पशुओं में टीकाकरण, डीवर्मिंग, कैस्ट्रेशन, डीहॉर्निंग के साथ-साथ पशुओं में कृत्रिम गर्भाधान तकनीक एवं सेक्ससॉर्टेड सीमेन की विस्तृत जानकारी छात्राओं को दी गई। छात्राओं द्वारा प्रायोगिक तौर पर पॉलीक्लीनिक में एक्सरे, एक्सरे मशीन, एक्सरे डेवलपिंग चैम्बर, अल्ट्रासाउण्ड आदि के बारे में तकनीकी रूप से समझाया गया। डॉ. श्रीवास्तव द्वारा पशुओं में संतुलित दाना प्रबंधन द्वारा दुधारू पशुओं से उनकी क्षमता के अनुसार दुग्ध उत्पादन पर भी जोर दिया गया। उन्होंने पॉलीक्लीनिक द्वारा पशुपालकों को दी जा रहे पूरक आहार के बारे में भी संपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराई।

निर्माण कार्यों की प्रगति की नियमित हो मॉनीटरिंग

ग्वालियर। ग्वालियर में केन्द्र सरकार की सेतु बंधन योजना अंतर्गत जिले में संचालित एमपी आरडीसी द्वारा किए जा रहे कार्यों की कलेक्टर श्रीमती रुचिका चौहान ने समीक्षा की और कार्यों को शीघ्रता के साथ करने के निर्देश दिए। बैठक में मोहना आरओबी, हरिशंकरपुरम एवं मेहलगांव आरयूबी, जेएएच एवं हजार बिस्तर अस्पताल अंडरपास, जलालपुर आरओबी के कार्यों की विस्तार से समीक्षा की। बैठक में एमपीआरडीसी के अधिकारी एवं निर्माण एजेंसी के इंजीनियर उपस्थित थे। कलेक्टर श्रीमती चौहान ने समीक्षा के दौरान निर्देशित किया है कि स्वीकृत सभी कार्य तेजी के साथ किए जाएं।

02/2025-26

अजोला : उत्तम जैव उर्वरक सह प्रोटीन युक्त पशु आहार

✍ डॉ (श्रीमती) गीता सिंह वैज्ञानिक,
कृषि विस्तार कृषि विज्ञान केंद्र, डिंडोरी
जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय (म.प्र.)

अजोला एक जलीय फर्न (water fern) है जो पानी की सतह पर उगता है और यह "मच्छर फर्न" के नाम से भी जाना जाता है। यह धान की फसल के लिए एक उपयोगी जैव-उर्वरक है और पशुओं के लिए एक पौष्टिक, सस्ता हरा चारा है, क्योंकि इसमें प्रोटीन, फाइबर और आवश्यक अमीनो एसिड भरपूर मात्रा में होते हैं। अजोला लगाने के लिए सबसे पहले एक क्यारी या गड्ढा बनाएं, उसमें प्लास्टिक शीट बिछाकर पानी भरें, मिट्टी और गोबर का घोल मिलाएं, और फिर अजोला का बीज डालकर फैला दें। अजोला 7-10 दिनों में पूरी तरह फैल जाता है, और आप इसे नियमित रूप से सुपरफॉस्फेट और गोबर से खाद दे सकते हैं।

अजोला लगाने की विधि

1. क्यारी या गड्ढा तैयार करें

एक छायादार जगह चुनें और 4 मीटर लंबा, 1.5 मीटर चौड़ा और 20 सेंटीमीटर गहरा गड्ढा खोदें।

आपकी आवश्यकतानुसार, 4 फीट गुणा 4 फीट (लगभग 1.2 मीटर × 1.2 मीटर) के गड्ढे भी बना सकते हैं।

गड्ढे के अंदर प्लास्टिक शीट (120 गेज) बिछा दें ताकि पानी का रिसाव न हो और जड़ों को रोका जा सके।

2. मिट्टी और पानी मिलाएं

प्लास्टिक शीट के ऊपर लगभग 10-15 किलो छनी हुई मिट्टी समान रूप से फैला दें।

5-7 किलो पुराने गोबर को 15-20 लीटर पानी में घोलें। गोबर और मिट्टी के घोल को गड्ढे में डालें और पानी से भरें, जिससे पानी की गहराई लगभग 8-15 सेंटीमीटर हो जाए।

इस मिश्रण को अच्छी तरह मिलाएं।

3. अजोला का बीज डालें

1-2 किलो ताजा, रोगमुक्त अजोला का बीज गड्ढे में फैला दें।

बीज को पानी की सतह पर धीरे से फैलाएं।

यदि आप रोजाना अजोला चाहते हैं, तो हर 7 दिनों में 2 किलो गोबर और 20 ग्राम अजोफर्ट या 10 लीटर पानी में 20 ग्राम सुपरफास्फेट को मिलाकर घोल बनाकर गड्ढे में डालें।

4. अजोला की कटाई और देखभाल

अजोला 7-10 दिनों में पूरी तरह से गड्ढे में भर जाता है। जब अजोला पूरी तरह फैल जाए, तो आप इसे बांस की छन्नीदार टोकरी से निकाल सकते हैं।

विशेष

1. बेहतर उत्पादन के लिए, अजोला को नियमित रूप से सुपरफास्फेट और गोबर की खाद देते रहें।
2. अजोला को ताजा साफ पानी से धोएं ताकि गोबर की गंध और गंदगी निकल जाए।
3. तेज धूप से बचाएं क्योंकि इससे रंग लाल हो जाता है और उत्पादन धीमी हो जाती है।

अजोला एक जलीय फर्न है, इसलिए इसे ठंडे मौसम में प्लास्टिक शीट से ढककर बचा सकते हैं। अजोला घास के कई फायदे हैं, मुख्य रूप से पशुधन के लिए एक पौष्टिक और सस्ता चारा, जिससे दूध उत्पादन और जानवरों के वजन में वृद्धि होती है। यह प्रोटीन, विटामिन, और खनिजों से भरपूर है, जो पशुओं के स्वास्थ्य में सुधार करता है। इसके अतिरिक्त, इसका उपयोग जैव-उर्वरक के रूप में भी किया जाता है।

पशुधन के लिए लाभ

उत्कृष्ट पोषण: इसमें उच्च प्रोटीन (40-60%), विटामिन (जैसे A, B12, बीटा-कैरोटीन), और आवश्यक खनिज (कैल्शियम, फॉस्फोरस, लोहा, आदि) होते हैं, जो इसे एक पौष्टिक चारा बनाते हैं।

दूध उत्पादन में वृद्धि: नियमित आहार में 1.5-2 किलोग्राम अजोला मिलाने से दुधारू पशुओं के दूध उत्पादन में 15-20% की वृद्धि देखी गई है।

सुपाच्य: अजोला आसानी से पच जाता है और जानवरों के पाचन स्वास्थ्य में सुधार करता है।

पशुओं के स्वास्थ्य में सुधार: यह पशुओं में बांझपन और फॉस्फोरस की कमी को दूर करने में मदद करता है, जिससे शारीरिक विकास बेहतर होता है।

पशुओं की विभिन्न किस्में: इसे गाय, भैंस, भेड़, बकरी, मुर्गी और मछली जैसे कई पशुओं को खिलाया जा सकता है।

अन्य लाभ

जैव-उर्वरक: अजोला का उपयोग जैविक उर्वरक के रूप में भी किया जाता है जिससे मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है।

जैव-स्वच्छकर्ता: यह पानी से भारी धातुओं को दूर करने में भी मदद करता है।

तेज वृद्धि: यह बहुत जल्दी बढ़ता है और लगभग हर 3 से 10 दिनों में दोगुना हो सकता है, जिससे किसानों के लिए यह एक किफायती विकल्प बन जाता है।

अक्षिता एग्रो

राघवेन्द्र सिंह
8959728253
खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक एवं खेरिज विक्रेता
हमारे यहां सभी प्रकार के बीज एवं कीटनाशक दवाएं एवं खरपतवार नाशक दवाएं और अधिक उपज की दवाएं उचित दामों पर मिलती हैं
पता : अरैया रोड, आंतरी, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
01/205-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

बकरी पालन में टीकाकरण एवं आवश्यक सावधानियाँ

✍डॉ. मोहब्बत सिंह जमरा, डॉ. संदीप नानावटी
✍डॉ. निर्मला जमरा, डॉ. नवल सिंह रावत
✍डॉ. कविता रावत व रश्मि यादव
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय,
(एन.डी.वी. एस.यू.), महू, इन्दौर (म.प्र.)

टीकाकरण से पहले सावधानियाँ

* टीके की बोतल पर लिखी निर्माण तिथि, एक्सपायरी तिथि अवश्य जाँचं ले। यदि टीका एक्सपायर्ड हो चुका हो, तब उस टीके को वापस कर देवे। ऐसे टीके बेअसर और जोखिमपूर्ण हो सकते है।

* टीकों को हमेशा ठंडे तापमान (2-8 डिग्री सेल्सयस) में सुरक्षित रखें। टीकाकरण से पहले और बाद मे टीको को कोल्ड चेन मे रखना अनिवार्य है, ताकि उनकी क्षमता बनी रहे।

* सिरिंज एवं सुई को पूरी तरह स्टरलाइज और स्वच्छ रखे, ताकि संक्रमण का खतरा न रहे।

* अत्यधिक गर्मी या लगातार वर्षा के समय टीकाकरण न करे- सुबह या शाम का समय टीकाकरण के लिए सबसे उपयुक्त होता है।

* टीकाकरण से पहले झुंड का रिकार्ड अवश्य जाँचे- जिससे यह पता चल सके कि पशु को कौन सा टीका कब लगाया गया था, इसका रिकार्ड जाँच कर फिर टीका लगाना चाहिए।

* टीकाकरण से कम से कम 07 दिन पहले कृमिनाशक दवाई अवश्य दें, ताकि शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बेहतर हो सके।

* झुंड के सभी पशुओ की पहचान (टैग) जरूर करे, ताकि टीका उसी दिन किसी पशु को दो बार ना लगे व सही जानकारी रिकार्ड की जा सके।

टीकाकरण से दौरान सावधानियाँ

* टीकाकरण केवल स्वस्थ बकरियों का ही करें। कमजोर या बीमार बकरियों को पहले उपचार दें और स्वस्थ होने के बाद ही टीका लगाएँ।

* टीका लगाने का कार्य हमेशा साफ- सुथरी व निर्धारित जगह पर ही करें, ताकि किसी भी प्रकार का संक्रमण न फैले।

* हमेशा नई, साफ सिरिंज व सुई का उपयोग करे- एक ही सुई को बार- बार इस्तेमाल न करें, क्योकि इससे रोग फैलने का खतरा रहता है।

* गर्भावस्था के अंतिम महीने मे बकरियो का टीकाकरण न करें, क्योकि इससे गर्भपात या जटिलता का खतरा हाक सकता है।

* पशु के खुले घाव, सूजन या जख्मी स्थान पर कभी भीं इंजेक्शन न लगाएँ- ऐसे स्थान पर इंजेक्शन लगाने से संक्रमण हो सकता है।

* टीके की मात्रा पशु चिकित्सक के निर्देशानुसार ही दें-प्रत्येक टीके का मात्रा अलग-अलग होती है, अत:बिना जानकारी के अधिक या कम डोज न दें।

* मल्टी डोज वाली शीशी में सुई बार-बार नही बदलना चाहिए।

* टीकाकरण का रिकार्ड अवश्य लिखे। जिसमे बकरी की पहचान आइडी नम्बर, उम्र, टीका का नाम, दिनाँक, अगला टीका की तारीख।

* इंजेक्शन लगाने से पहले त्वचा को अच्छी तरह साफ करे ओर सूखने दे फिर टीका लगाएँ।

* ठंडे क्षेत्र से निकाले गए टीकों को तुरंत न लगाएँ, बल्कि कुछ मिनट सामान्य तापमान पर रखे, फिर टीकाकरण करे।

* किसी भी बकरी को टीका लगाते समय जल्दबाजी न करे। शांत, सावधानापूर्ण और सही तकनीक का प्रयोग करे।

टीकाकरण के बाद सावधानियां

* टीका देने के बाद बकरियो को कम से कम 30-60 मिनट तक निगरानी में रखें- कुछ बकरियो में हल्की प्रतिक्रिया जैसे सुजन या सुस्ती हो सकती हैं जो सामान्य है।
* टीकाकरण के बाद किसी भी बकरी को तुरंत बाहर चराने न छोडे।
* पौष्टिक आहार एवं साफ पानी दें।
* खाली शीशी को सुरक्षित नष्ट करें- शीशी को जमीन में गाड़ दे या किसी कचरा बाँक्स में सुरक्षित रूप से डाले, बच्चो और जानवरों से दूर रखें।

बीमारी का नाम	टीके का नाम	पहला टीका कब लगाए	बूस्टर	मात्रा	समय
एंटरोटोक्सिमिया	इ. टी.वैक्सीन	03 माह की उम्र	21 दिन बाद (सबक्यूटेनस)	2 मि. ली.	हर वर्ष (बरसात से पहले)
छोटी ज्वर (पेस्टे डेस पेटिटस रूमिनेन्ट)	पी. पी. आर वैक्सीन	03 माह की उम्र	नही	1 मि. ली. (सबक्यूटेनस)	हर 03 वर्ष में
खुरपका- मुंहपका	एफ.एम.डी. वैक्सीन	03-04 माह की उम्र	03 सप्ताह बाद	1 मि. ली. (सबक्यूटेनस)	06 महीने (मार्च-अप्रैल,सितं.-अक्टू.)
बकरी चेचक	बकरी चेचक वैक्सीन	03 माह की उम्र	03 सप्ताह बाद	1 मि. ली. (सबक्यूटेनस)	हर वर्ष
सी.सी. पी.पी.	सी.सी. पी.पी. वैक्सीन	03 माह की उम्र	नही	01 मि. ली. (सबक्यूटेनस)	हर वर्ष
ब्रूसेलोसिस	एस-19 वैक्सीन	03-06 माह की उम्र	नही	2 मि. ली.(सबक्यूटेनस)	जीवन में एक ही बार (केवल मादा को)
रेबीज	एंटी रेबीज वैक्सीन	कुत्ते के काटने के तुरंत बाद	03,07,14,28, 90 दिन	1 मि. ली. माँस में	विशेष स्थिति में
एंथ्रेक्स	एंथ्रेक्स वैक्सीन	06 माह की उम्र	नही	1 मि. ली. (सबक्यूटेनस)	वर्ष में एक बार (केवल प्रभावित क्षेत्र में)

नोट: टीके के नाम, खुरीक और रूट वैक्सीन बनाने वाली कंपनी के अनुसार अलग-अलग हो सकता है। सही जानकारी के लिए पशु चिकित्सक से सलाह लें।

12/2025-26

डीएपी रासायनिक खाद के कई वैकल्पिक स्त्रोत

डॉ. विश्वनाथ सिंह कंसाना वरि.तक. अधिकारी (कृषि प्रसार)
कृषि विज्ञान केन्द्र, दतिया (म.प्र.)

* डीएपी रासायनिक खाद के ऊपर पूर्ण निर्भर न रहें किसान भाई
* उपलब्धता के आधार पर रासायनिक खादों का उपयोग करे किसान भाई
* डीएपी के वैकल्पिक तौर पर मिश्रित उर्वरक एवं जैविक खादों उपयोग करें किसान भाई
* डीएपी के वैकल्पिक तौर पर कई रासायनिक उर्वरक एवं जैविक स्रोत उपलब्ध रासायनिक उर्वरकों का अनुशंसित आधार पर संतुलित मात्रा में उपयोग करें
* डीएपी का उपयोग दलहनी एवं तिलहनी फसलों में नहीं करें इसके स्थान पर अन्य अनुशंसित उर्वरक का उपयोग ही करें किसान भाई
* डीएपी (डाई अमोनियम फास्फेट) में दो मुख्य तत्व नाइट्रोजन (N) 18 प्रतिशत एवं फास्फोरस (P) 46 प्रतिशत होता है। इसमें दो अमोनियम (NH_4^+) एवं एक हाइड्रोजन फास्फेट (HPO_4^{-2}) आयान होता है।
* डीएपी में उपलब्ध फास्फोरस तत्व अगतिशील (Immobile) रासायनिक उर्वरक है जो हमेशा फसलों में आधार खाद (बोनी के पूर्व) के रूप में ही उपयोग किया जाता है।

फास्फोरस का पौधों एवं फसलों में महत्व

* बीज अंकुरण में मदद। * पौधों की जड़ों को विकसित करना। * पौधों में ऊर्जा संचारण (एटीपी) का निर्माण करना। * फल एवं फूल बनाने में सहायक। * पौधों एवं फसलों की परिपक्वता को तेज करना। * नाइट्रोजन एवं पोटाश के साथ मिलकर पौधों को संतुलित पोषण प्रदान करना। * पौधों में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाना। * फसल की गुणवत्ता एवं उपज में वृद्धि करना।

भारत में डीएपी के कम उत्पादन के मुख्य बिन्दु

* भारत में डीएपी का उत्पादन बहुत ही कम होता है।
* भारत में फास्फोरिक एसिड एवं अमोनिया का उत्पादन पर्याप्त मात्रा में नहीं होता है इस लिये हमें 75 प्रतिशत से ज्यादा चीन जार्डन, मोरक्को, यूक्रेन, रूस, सउदी अरब इत्यादि देशों से डीएपी उत्पादन हेतु कच्चे माल को आयात करना पड़ता है।
* फास्फेट चट्टान (Phosphate Rock) जिसमें फास्फोरिक एसिड बनता है। इस प्रकार के चट्टान भारत में बहुत कम मात्रा में पाई जाती है।
* कम कच्चे माल की उपलब्धता एवं ऊर्जा की ऊंची कीमतों के कारण भारत में डीएपी का स्थानीय उत्पादन महंगा पड़ता है।

भारत में डीएपी उत्पादन की मुख्य कंपनियां

* इफको * एन.एफ.एल. * प्रदीप फोस्फेट * कोरोमंडल इंटरनेशनल * चंबल फर्टिलाईजर

नोटः इन सभी कंपनी की उत्पादन क्षमता देश की कुल मांग के मुकाबले कम है। इसलिये इस प्रकार की रासायनिक खाद या इसके उत्पादन हेतु कच्चे माल (Row material) को विदेशों से आयात करना पड़ता है

उपलब्धता के आधार पर किसी भी एक रासायनिक उर्वरक का फसलों में संतुलित मात्रा में उपयोग करें

1. एस.एस.पी (सिंगल सुपर फास्फेट) : एसएसपी में 16 प्रतिशत P_2O_5 + 11 प्रतिशत सल्फर एवं कैल्शियम भी होता है। यह फास्फोरस का एक सस्ता विकल्प है। इसमें सल्फर की उपस्थिति के कारण तिलहन एवं दलहन फसलों के लिये विशेष रूप से लाभदायक है। जिससे फसलों में तेल एवं प्रोटीन की मात्रा बढ़ती है।

2. टी. एस. पी. (ट्रिपल सुपर फास्फेट) : यह फास्फोरस का एक शक्तिशाली स्रोत है जिसमें 46 प्रतिशत फास्फोरस (P_2O_5) पाया जाता है जो कि डीएपी के बराबर। इसलिये फसलों में फास्फोरस की पूर्ति हेतु इसे डीएपी के मुख्य विकल्प के रूप में उपयोग किया जाता है। इसमें 15 प्रतिशत कैल्शियम भी होता है जो पौधों की संरचनात्मक वृद्धि के लिये महत्वपूर्ण है। यह डीएपी में उपलब्ध नहीं होता है। इसमें नाइट्रोजन और पोटाश न होने के कारण फसलों में अलग से देना पड़ता है।

3. किसी भी एक मिश्रित रासायनिक उर्वरक का भी उपयोग करें

(1) एन.पी:के:: 12:32:16 या ग्रोमोर 28:28:0- मृदा में उपस्थित फास्फोरस की उपलब्धता में वृद्धि करने हेतु फास्फोरस घुलनकारी जैव उर्वरकों (पीएसबी) का प्रयोग लाभकारी होगा।

(2) एनपीः के :: 10:26:26 - फसल के आधार पर मिश्रित उर्वरक का उपयोग करें।

(3) एन:पी: के :: 16:16:16 - फसल, उपलब्धता एवं मृदा में पोषक तत्व के आधार पर संतुलित मात्रा में उर्वरक का उपयोग करें।

(4) एन:पी: एस :: 20:20:0:13 - गेहूं की सिंचित अवस्था पर यूरिया 150 एमओपी 67 किग्रा प्रति हेक्टेयर उपयोग करें एवं यह मिश्रित उर्वरक तिलहनी फसलों के लिये अत्यधिक उपयोगी है।

(5) प्रमोट खाद-Phosphorus Rich Organic Manure डीएपी का एक जैविक विकल्प है। यह मिट्टी की उर्वरता बनाये रखने और फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ाने में मदद करता है।

(6) यूरिया + एस.एस.पी. दोनों का संयोजन फसलों के आधार पर आवश्यकतानुसार संतुलित मात्रा में उपयोग करें।

नोट : डीएपी उर्वरक को तिलहन एवं दलहनी फसलों में उपयोग न करें किसान भाई इसके स्थान पर अन्य अनुशंसित उर्वरकों का उपयोग करें।

4. वर्मीकम्पोस्ट एवं गोबर खाद (FYM) सामान्य सिफारिश (बुवाई के पूर्व)

क्र.	फसल का प्रकार	वर्मीकम्पोस्ट की मात्रा क्विं./हे.	गोबर खाद की मात्रा क्विं./हे.	उपयोग का समय
1	अनाज वाली फसले गेहूं, धान, जौ इत्यादि	20-25	100-125	बुआई के पूर्व खेत में अच्छी तरह मिलायें
2	दलहनी फसलें चना, मटर, मसूर, मूंग, उड़द इत्यादि	15-20	80-100	
3	तिलहनी फसलें सरसों, मूंगफली, सोयाबीन,तिल इत्यादि	20-25	100-120	
4	सब्जियां टमाटर, प्याज, आलू, इत्यादि	40-50	120-150	
5	गन्ना	50-60	150-200	
6	फलदार वृक्ष आम,आंवला, नीबू, अमरूद, संतरा, मौसम्मी, अनार इत्यादि		50-100 कि.ग्रा. प्रति पौधा	

4. वर्मीकम्पोस्ट एवं गोबर खाद (FYM) सामान्य सिफारिश (बुवाई के पूर्व)

रासायनिक उर्वरक का संक्षिप्त विवरण

क्र.	विकल्प	प्रमुख तत्व / संरचना	विशेषतायें
1	डीएपी (DAP)	18% N , 46% P	मुख्य दोहरी खाद
2	एसएसपी (SSP)	16% P, 11% S	सस्ता एवं सल्फर युक्त
3	टीएसपी (TSP)	46% P	फास्फोरस का शुद्ध स्रोत एवं डीएपी का अच्छा वैकल्पि स्रोत
4	एनपीके मिश्रित उर्वरक 10:26:26 (N:P:K) 12:32:16 (Complex fertilizer) 16:16:16 (N:P:K) 20:20:0:13 (N:P:S) 20:20:0 (N, P) 16:20:0 (Ammonium Phosphate)	N:P:K & N:P:S	संतुलित मिश्रित उर्वरक एवं कुछ उर्वरकों को डीएपी के वैकल्पिक तौर पर उपयोग किया जाता है
5	यूरिया + एसएसपी	N, P	सस्ता विकल्प
6	जैव उर्वरक – पीएसबी, राइजोबियम, ओजोस्पिरलम	फास्फोरस एवं नाइट्रोजन घुलनशील करने में मदद	पर्यावरण एवं मृदा उर्वरता के लिये अनुकूल
7	वर्मी कम्पोस्ट, गोबर की खाद (FYM)	सूक्ष्म पोषक तत्व	पर्यावरण अनुकूल
8	पोटेशियम फास्फेट (0:52:34) मोनो मोनियम फास्फेट (13:61:0) यूरिया फास्फेट (17:44:0)	N, P, K	पर्णीय छिड़काव एवं डीएपी का वैकल्पिक स्रोत
9	नैनो डीएपी	नैनो टेक्नोलॉजी द्वारा आधारित फास्फोरस उर्वरक	बीज उपचार एवं पर्णीय छिड़काव द्वारा फास्फोरस की पूर्ति 500–600 एमएल / एकड़

5. हरी खाद : सनई, ढचा इत्यादि का हरी खाद के रूप में प्रयोग करें। इसके प्रयोग से मृदा में कार्बनिक प्रतिशत बढ़ता है एवं 30-35 प्रतिशत रासायनिक उर्वरक के उपयोग में कमी आती है ।

6. मुर्गी / बकरी / अन्य खाद : इसका प्रयोग भी कुछ फसलों में जैविक खाद के रूप में किया जा सकता है। इसके प्रयोग से मृदा में कार्बनिक प्रतिशत बढ़ता है।

नोट : किसी भी विकल्प का उपयोग करने से पहले, फसल की विशिष्ट आवश्यकताओं और मृदा की जांच के आधार पर या किसी मृदा कृषि विशेषज्ञ से परामर्श लेकर ही संतुलित मात्रा में रासायनिक खादों का प्रयोग करें।

रासायनिक उर्वरक का संक्षिप्त विवरण

केन्द्र सरकार किसानों को रासायनिक उर्वरक सस्ती दरों पर उपलब्ध कराने के लिये कुछ उर्वरक पर अनुदान (सब्सिडी) देती है ताकि खेती की लागत कम हो और खाद्य सुरक्षा बनी रहे एवं खेती को लाभ का धंधा / व्यवसाय बनाने में सरकार सहयोग कर सके। अतः खाद्य उत्पादन और आत्मनिर्भरता बनाये रखने के लिये, अधिक उत्पादन हेतु कृषि क्षेत्र की स्थिरता, किसान कल्याण और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बढ़ाने हेतु सरकार द्वारा अनुदान (एनबीएस 2010) निम्नलिखित प्रदाय किया जाता है।

भारत सरकार द्वारा डीएपी एवं यूरिया पर दिये जाने वाला अनुदान विवरण

क्र.	उर्वरक	बैग साईज	वास्तविक मूल्य (रू / बैग)	सरकार द्वारा प्रदाय अनुदान (रू / बैग)	कृषकों द्वारा क्रम दर (रू / बैग)
1	डीएपी	50 कि.ग्रा.	2446.00	900.00	1350.00
2	यूरिया	45 कि.ग्रा.	1907.50	1640.00	266.50

नोटः सरकार द्वारा दिया जाने वाला अनुदान समय-समय पर परिवर्तनीय है।
प्रति कि.ग्रा. पोषक तत्व (एन.पी.के.एस.) की सब्सिडी दरें
नाईट्रोजन-43.02/किग्र.ग्रा. फॉस्फोरस (P)-47.96/ कि.ग्रा.
पोटाश (K)-2.38/कि.ग्रा. सल्फर (S)-2.87/कि.ग्रा.

जैविक/कार्बनिक खाद उपयोग करने के लाभ

* मिट्टी की जैविक कार्बनिक मात्रा बढ़ती है।
* जैविक खाद के उपयोग से मृदा के मुख्य पोषक तत्वों की मात्रा को बढ़ाता है।
* रासायनिक उर्वरक की आवश्यकता को 30-40% कम करता है।
* मृदा संरचना एवं मृदा कर्णाकार में सुधार आता है।
* पर्यावरण एवं प्रकृति के लिए बेहद अनुकूल है।
* मृदा में कार्बनिक प्रतिशत को बढ़ाता है।
* मृदा में कृषि के लिए लाभदायक जीवाणुओं की वृद्धि करता है।
* मृदा का पीएच मान संतुलित रखता है।
* फसलों की गुणवत्ता एवं मात्रा में वृद्धि करता है।
* किसान की लागत कम होती है।
* खेती को लाभ का धंधा बनाने में सहायक है।
* प्रदूषण मुक्त टिकाऊ खेती को बढ़ावा
* फसलों में कीट एवं रोग प्रतिरोधकता बढ़ती है।
* मानव जीवन के स्वास्थ्य एवं इसके प्रबंधन में सहयोग करता है।
* फसलों एवं पौधों को धीरे-धीरे लंबे समय तक पोषक तत्व उपलब्ध होते हैं।

कृषि छात्राओं ने समझी नैनो फर्टिलाईजर की उपयोग एवं प्रयोग विधि

दतिया। कृषि विज्ञान केन्द्र दतिया में ग्रामीण कृषि कार्य अनुभव (रावे) के अंतर्गत छात्राओं का नैनो फर्टीलाईजर विषय पर एक दिवसीय प्रायोगिक प्रशिक्षण का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम की शुरूआत करते हुये रूपेन्द्र कुमार महोलिया, क्षेत्रीय प्रबंधक इफको द्वारा छात्राओं को नैनो यूरिया, नैनो डीएपी का फसल संग्रहालय के गेहूं पर प्रायोगिक प्रशिक्षण करके बताया इन छात्राओं को महोलिया द्वारा नैनो यूरिया और नैनो डीएपी की 500 एमएल प्रति हे. के स्प्रे हेतु सलाह दी साथ ही इसके महत्व को बताया। छात्राओं को बताया कि किसानों को रासायनिक डीएपी उर्वरक पर निर्भर न रहें इसके स्थान पर नैनो डीएपी का उपयोग करें इसके उपयोग से फसल उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ पौधों को पूर्ण रूप से फॉस्फोरस की प्राप्ति होती है। इस नैनो डीएपी और नैनो यूरिया का गेहूं की बोनी के 30-35 दिन उपरांत फसल पर प्रति पंप (15 ली.) 100 एमएल 7 पंप प्रति एकड़ के हिसाब से इसका छिड़काव कर सकते हैं। इसके बाद डॉ. विश्वनाथ सिंह कंसाना प्रभारी रावे ने छात्राओं को विभिन्न प्रकार के रासायनिक उर्वरक एवं पोषक तत्व जैसे डीएपी, यूरिया, पोटाश, जिंक, टीएसपी, 16:16:16, 12:32:16, 19:19:19, पोटेशियम सल्फेट इत्यादि की छात्राओं को प्रायोगिक पहचान बताकर फसलों पर इनकी उपयोग की विधि को विस्तार से बताया। इस कार्यक्रम में पशुपालन वैज्ञानिक डॉ. रूपेश जैन ने कृषि छात्राओं को पशुपालन संबंधी एवं पशु पोषण के उन्नत तकनीकियों के बारे में जानकारी दी। कार्यक्रम में इफको से राहुल सिंह चौहान, अंकित शर्मा सहित रावे छात्रायें निक्की शर्मा, भक्ति पाण्डेय, शिवानी कुशवाह, मुस्कान जाटव, गरिमा शर्मा, अंजली शर्मा, वंदना धाकड़, वंदना नरवरिया, पलक अग्रवाल, मोनिका राजपूत, महक नागौर, श्रृष्टि, सारिका शर्मा, नंदनी जादौन इत्यादि छात्राओं ने इफकों के द्वारा आयोजित कार्यक्रम में सहभागिता कर लाभ लिया।

कृषि छात्राओं ने जानी विभिन्न रासायनिक उर्वरकों की पहचान

रोसेल : ग्वालियर क्षेत्र के लिए एक उभरती हुई संभावनाशील फसल

डॉ. शिप्रा सिंह परमार, डॉ. रंजीत रेड्डी
डॉ. पुष्पेन्द्र कुमार, डॉ. दिव्या पांडेय
डॉ. वर्तिका सिंह, डॉ. एस. के. शर्मा
बागवानी विभाग, कृषि विद्यालय, आईटीएम विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

रोसेल (Hibiscus sabdariffa), जिसे दक्षिण भारत में स्थानीय रूप से गोंगुरा कहा जाता है, की सफल खेती बागवानी विभाग, कृषि विद्यालय, आईटीएम विश्वविद्यालय, ग्वालियर में की गई है। रोसेल एक वार्षिक पौधा है, उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय फसल है तथा मालवेसी कुल से संबंधित है। भारत में रोसेल की खेती मुख्यतः रेशा (फाइबर) और कैलिक्स (पुष्पदल आवरण) की उपज के लिए की जाती है। इसका नेतृत्व उद्यानिकी विभागाध्यक्ष डॉ. एस. के. शर्मा के मार्गदर्शन में किया जा रहा है। इस पहल में वैज्ञानिक डॉ. शिप्रा सिंह परमार, डॉ. रंजीत रेड्डी, डॉ. पुष्पेन्द्र कुमार, डॉ. दिव्या पांडेय और डॉ. वर्तिका सिंह सक्रिय रूप से शामिल हैं। विभाग के अनुसार, यह प्रयास ग्वालियर क्षेत्र में फसल विविधीकरण, पोषण सुरक्षा, मृदा स्वास्थ्य सुधार और सतत कृषि विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम सिद्ध होगा।

रोसेल में विटामिन C, आयरन तथा एंटीऑक्सीडेंट्स प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जिसके कारण यह अपने स्वास्थ्यवर्धक गुणों और चटनी, अचार तथा पेय पदार्थों में उपयोग के लिए अत्यंत उपयोगी है। रोसेल में कई औषधीय गुण भी पाए जाते हैं। हर्बल चाय के रूप में इसका सेवन करने से सर्दी-जुकाम में आराम, बंद नाक खुलना, बलगम साफ होना, कसैले प्रभाव, गुर्दों की कार्यक्षमता में सुधार, पाचन में सहायता, सामान्य टॉनिक के रूप में, मूत्रवर्धक प्रभाव तथा बुखार कम करने में मदद मिलती है। इसके औषधीय अर्क का उपयोग हृदय एवं तंत्रिका रोगों, दमा तथा त्वचा रोगों के उपचार में भी किया जाता है।

मिट्टी

यह फसल रेतीली मिट्टी से लेकर भारी चिकनी मिट्टी तक विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उगाई जा सकती है। हालांकि, अच्छी जल निकास वाली दोमट मिट्टी, जिसमें पर्याप्त मात्रा में जैविक पदार्थ हो, इसकी खेती के लिए सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है।

जलवायु

रोसेल को गरम आर्द्र या शुष्क जलवायु पसंद है, जहाँ वार्षिक वर्षा 150-200 सेमी हो तथा वृद्धि अवधि में लगभग 25 सेमी प्रति माह वर्षा हो। इसे वर्षा आधारित या सिंचित फसल के रूप में उगाया जा सकता है, लेकिन यह लगातार भारी वर्षा, जलभराव, शीत ऋतु की ठंड और पाले को सहन नहीं कर पाती। यह फसल समुद्र तल से 600-780 मीटर की ऊँचाई तक अच्छी तरह उगती है।

बुवाई

रोसेल का प्रसार सामान्यतः सीधे खेत में बीज बोने से किया जाता है। चूँकि बीजों की जीवन क्षमता जल्दी घट जाती है, इसलिए पिछले मौसम के ताजे बीजों का ही उपयोग करना चाहिए। बुवाई से पहले भूमि की अच्छी तरह जुताई कर उसे भुरभुरी (fine tilth) अवस्था में लाया जाता है। 6 मीटर म 4.5 मीटर आकार की क्यारियाँ बनाकर, अनुशंसित मात्रा में गोबर की खाद और उर्वरक मिट्टी में मिलाए जाते हैं।

सिंचाई एवं अंतर-खरपतवार क्रियाएं

यदि वर्षा न हो तो बुवाई के तुरंत बाद सिंचाई की जाती है। अंकुरण और पौधों की अच्छी स्थापना तक हर 4 दिन के अंतराल पर सिंचाई आवश्यक होती है। इसके बाद शुष्क अवधि में साप्ताहिक सिंचाई पर्याप्त होती है।

कटाई एवं उपज

रोसेल एक 150-180 दिन की अवधि वाली फसल है। बुवाई के 45-60 दिन बाद फूल आना शुरू हो जाता है, जो लगभग 4 महीनों तक चलता है। फूल आने के 15-20 दिन बाद कैलिक्स तोड़ने योग्य हो जाते हैं। फल तब तोड़े जाते हैं जब वे कोमल, भरे हुए, मांसल, कुरकुरे और गहरे लाल रंग के हों। कैलिक्स को अलग कर ताजा उपयोग किया जाता है या छाया में 12-15 दिन सुखाया जाता है, जब तक नमी स्तर 12% तक न पहुँच जाए। कटाई का मौसम लगभग 2-3 महीने तक रहता है। बीज उत्पादन के लिए कैलिक्स को उस अवस्था में तोड़ा जाता है जब कैप्सूल पौधे से जुड़ा हो। बाद में जब निचले और मध्य कैप्सूल सूखकर फटने लगें, तो उन्हें अलग से काटा जाता है। पौधों को जमीन की सतह से काटकर खलिहान में लाया जाता है तथा बीज निकालकर साफ किए जाते हैं। प्रति हेक्टेयर लगभग 13,000-14,000 किग्रा ताजा कैलिक्स, जिससे 1,800-2,000 किग्रा सूखे कैलिक्स, तथा 2,500-3,000 किग्रा बीज की उपज प्राप्त हो सकती है। कैलिक्स से 1.97% रंग (डाई) तथा बीजों से 16.2% वसायुक्त तेल की प्राप्ति होती है।

01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

जनजातीय किसानों में लैंगिक आधारित जलवायु संवेदनशीलता और अनुकूलन ज्ञान का मूल्यांकन

✍ चेतना पाठक, अभिजीत कुडेरिया
(पीएचडी स्कॉलर) विस्तार शिक्षा विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

✍ डॉ. सीमा नबेरिया कुडेरिया विस्तार शिक्षा विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर

भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 8.6 प्रतिशत भाग (जनगणना, 2011) जनजातीय समुदायों से संबंधित है, जिनमें से लगभग 85 प्रतिशत लोग कृषि एवं उससे जुड़ी गतिविधियों पर निर्भर हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण इन समुदायों की आजीविका पर गहरा प्रभाव पड़ा है। असमान वर्षा, तापमान में वृद्धि, फसलों में रोग एवं कीट प्रकोप तथा जल संसाधनों की कमी जैसी समस्याएँ जनजातीय किसानों के लिए गंभीर चुनौतियाँ बन चुकी हैं। चूँकि जनजातीय अर्थव्यवस्था मुख्यतः वर्षा-आधारित कृषि पर निर्भर है, इसलिए जलवायु परिवर्तन का प्रभाव इन पर प्रत्यक्ष और तीव्र रूप से परिलक्षित होता है। जब जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का विश्लेषण लैंगिक दृष्टिकोण से किया जाता है, तो यह स्पष्ट होता है कि जनजातीय महिलाएँ पुरुषों की तुलना में अधिक संवेदनशील होती हैं। इसका प्रमुख कारण सामाजिक, आर्थिक और संस्थागत असमानताएँ हैं, जो महिलाओं की अनुकूलन क्षमता को सीमित करती हैं।

लैंगिक असमानता और जलवायु संवेदनशीलता

जनजातीय महिलाएँ कृषि कार्यों–जैसे बीज चयन, बुवाई, निराई-गुड़ाई तथा कटाई–में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इसके बावजूद उनके पास भूमि स्वामित्व का अभाव होता है तथा कृषि संसाधनों, ऋण, प्रशिक्षण और तकनीकी जानकारी तक उनकी पहुँच सीमित रहती है। परिणामस्वरूप, सूखा, अतिवृष्टि अथवा कीट प्रकोप जैसी जलवायु आपदाओं से उबरना उनके लिए अधिक कठिन हो जाता है। इसके विपरीत, पुरुष प्रायः निर्णय-निर्माण की प्रक्रियाओं में अग्रणी भूमिका निभाते हैं और बाजार, कृषि विभाग तथा अन्य संस्थानों से जुड़े रहते हैं, जिससे उन्हें समय पर सूचना एवं तकनीकी सहायता उपलब्ध हो जाती है। यह लैंगिक "ज्ञान असमानता" जलवायु अनुकूलन की क्षमता में स्पष्ट अंतर उत्पन्न करती है।

लैंगिक-आधारित जलवायु संवेदनशीलता : साक्ष्य

नीति आयोग (2022) एवं भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR, 2023) के अध्ययनों के अनुसार—

* जनजातीय महिलाओं में लगभग 74 प्रतिशत महिलाएँ कृषि कार्यों में सक्रिय रूप से संलग्न हैं, किंतु केवल 13 प्रतिशत के पास भूमि स्वामित्व है।
* जलवायु संकट की परिस्थितियों (जैसे सूखा या अतिवृष्टि) में महिलाओं की आय में औसतन 22-25 प्रतिशत की कमी दर्ज की गई, जबकि पुरुषों की आय में यह कमी 10-12 प्रतिशत पाई गई।
* पुरुष किसानों को कृषि विभाग अथवा गैर-सरकारी संगठनों से लगभग 68 प्रतिशत मामलों में प्रशिक्षण प्राप्त हुआ, जबकि महिलाओं में यह अनुपात केवल 31 प्रतिशत रहा।

ये आँकड़े स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि सामाजिक एवं आर्थिक असमानताओं के कारण जनजातीय महिलाएँ जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक संवेदनशील हैं।

अनुकूलन ज्ञान एवं रणनीतियां

ICAR (2023) की रिपोर्ट के अनुसार, जनजातीय क्षेत्रों में महिलाओं का पारंपरिक ज्ञान जलवायु अनुकूलन में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

महिलाएं: बीज संरक्षण, पारंपरिक फसल विविधता, जैविक खादों का उपयोग तथा स्थानीय जल संरक्षण तकनीकों को अपनाती हैं।

पुरुष: सिंचाई तकनीकों, आधुनिक कृषि यंत्रों एवं बाजार-उन्मुख फसलों पर अधिक ध्यान केंद्रित करते हैं।

CARR (2021) द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार विभिन्न राज्यों में जलवायु ज्ञान का स्तर निम्नानुसार पाया गया–

राज्य	पुरुषों में जलवायु ज्ञान (%)	महिलाओं में जलवायु ज्ञान (%)
झारखंड	61	37
ओडिशा	59	34
छत्तीसगढ़	64	41

यह अंतर इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि महिलाओं के लिए सूचना, प्रशिक्षण और विस्तार सेवाओं तक पहुँच बढ़ाना अत्यंत आवश्यक है।

नीति निहितार्थ: अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए अपनाई जाने वाली रणनीतियों में लैंगिक भिन्नता पाई जाती है। महिलाएँ प्रायः पारंपरिक और संसाधन-संरक्षण आधारित उपायों–जैसे मिश्रित खेती, फसल विविधीकरण और जैविक खाद–को अपनाती हैं, जबकि पुरुष आधुनिक तकनीकों और बाजार-आधारित विकल्पों को प्राथमिकता देते हैं। हालाँकि, यह भी प्रमाणित हुआ है कि जब महिलाओं को उपयुक्त प्रशिक्षण, कृषि विस्तार सेवाएँ और जलवायु संबंधी जानकारी उपलब्ध कराई जाती है, तो वे भी प्रभावी अनुकूलनकर्ता सिद्ध होती हैं। अतः जलवायु नीति निर्माण में लैंगिक-संवेदनशील दृष्टिकोण अपनाना अनिवार्य है।

नीति आयोग एवं स्वह (2022) की प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित हैं—

1. महिलाओं की निर्णय-निर्माण प्रक्रियाओं में सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जाए।
2. लैंगिक-संवेदनशील प्रशिक्षण एवं क्षमता-विकास कार्यक्रम लागू किए जाएँ।
3. जलवायु-स्मार्ट कृषि तकनीकों को जनजातीय क्षेत्रों में सुलभ बनाया जाए।
4. महिला स्वयं सहायता समूहों (स्वसह) को जलवायु जागरूकता एवं अनुकूलन अभियानों से जोड़ा जाए।

निष्कर्ष

जनजातीय समाज में विद्यमान लैंगिक असमानता जलवायु संवेदनशीलता को और अधिक गहन बना देती है। यदि महिलाओं को संसाधनों, भूमि अधिकारों, प्रशिक्षण एवं जानकारी तक समान पहुँच प्रदान की जाए, तो वे जलवायु परिवर्तन से निपटने में सशक्त भूमिका निभा सकती हैं। अतः लैंगिक दृष्टिकोण से जलवायु संवेदनशीलता का मूल्यांकन केवल सामाजिक न्याय का विषय नहीं, बल्कि प्रभावी और सतत जलवायु नीति निर्माण की अनिवार्य शर्त है। जनजातीय महिलाओं का सशक्तिकरण जलवायु अनुकूलन की कुंजी है, और लैंगिक संतुलन को प्राथमिकता देने से जनजातीय किसानों की आजीविका अधिक सुरक्षित, स्थायी और लचीली बन सकती है।

12/2025-26

कृषि नीतियां और युवा रोजगार: कृषि क्षेत्र की संभावनाएं

✍ **जैकी वर्मा** शोधार्थी, कृषि विस्तार, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

✍ **प्रिंस त्रिपाठी, मंदीप सिंह परमार** एम.एससी. (एग्री.) कृषि विस्तार, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

सारांश: भारत जैसे युवा-प्रधान देश में युवा बेरोज़गारी एक महत्वपूर्ण समस्या है, जबकि कृषि क्षेत्र ग्रामीण श्रम शक्ति का सबसे बड़ा रोजगारदाता बना हुआ है। यह लेख कृषि नीतियों की भूमिका की चर्चा करता है, जो केवल उत्पादन में वृद्धि तक सीमित नहीं रहकर युवाओं के लिए आकर्षक, लाभकारी और माननीय रोजगार के अवसर उत्पन्न कर सकती हैं। युवाओं को भूमि और पूँजी तक पहुँच, कौशल-तकनीक के अंतर, बुनियादी ढाँचे की कमी और आय में अस्थिरता जैसी बड़ी बाधाओं का सामना करना पड़ता है। युवा-संवेदी कृषि नीतियाँ भूमि अधिकार, कौशल प्रशिक्षण, सुलभ वित्त, उद्यमिता सहायता, मूल्य संवर्धन और बाजार तक पहुँच जैसे स्तंभों पर आधारित होकर युवाओं को कृषि को एक आकर्षक करियर बनाने में सहायता कर सकती हैं।

प्रस्तावना: भारत सहित दुनिया के अनेक देशों में एक तरफ़ बढ़ती हुई युवा बेरोज़गारी है, दूसरी तरफ़ कृषि क्षेत्र में मज़दूरों और नवाचारी उद्यमियों की कमी दिखाई देती है। संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन और हाल की रिपोर्टें मानती हैं कि यदि युवाओं को सही नीतिगत सहयोग मिले तो कृषि और संबद्ध क्षेत्र करोड़ों रोज़गार के अवसर पैदा कर सकते हैं और वैश्विक अर्थव्यवस्था को भी उल्लेखनीय बढ़ावा दे सकते हैं। ऐसे परिप्रेक्ष्य में कृषि नीतियाँ केवल उत्पादन बढ़ाने का साधन नहीं रह जातीं, वे युवा रोजगार सृजन का सशक्त औज़ार भी बन सकती हैं। भारत जैसे युवा-प्रधान राष्ट्र में, जहाँ प्रतिवर्ष बड़ी संख्या में युवा कार्यबल में शामिल होते हैं, युवा बेरोज़गारी एक गंभीर समस्या बनी हुई है। हालिया आँकड़ों के अनुसार, जहाँ कुल बेरोज़गारी दर लगभग 5.1% है, वहीं युवा बेरोज़गारी 14.6% के उच्च स्तर पर है (2025 का अनुमान)। इसके विपरीत, भारत की श्रम शक्ति का लगभग 45.76% (2022-23 डेटा) और ग्रामीण श्रम शक्ति का एक बड़ा हिस्सा (अप्रैल-जून 2025 की तिमाही में पुरुषों का 44.6% और महिलाओं का 70.9%) अभी भी कृषि और इससे जुड़े क्षेत्रों पर निर्भर है। विडंबना यह है कि कृषि सबसे बड़ा रोजगारदाता होने के बावजूद, ग्रामीण युवा इसे एक आकर्षक और लाभप्रद करियर विकल्प नहीं मानते, जिससे कृषि से शहरों की ओर पलायन बढ़ता जा रहा है। इस खाई को भरने और कृषि क्षेत्र को युवाओं हेतु आर्थिक इंजन बनाने में कृषि नीतियों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है।

कृषि क्षेत्र में युवा रोजगार की वर्तमान स्थिति- भारत रोजगार रिपोर्ट 2024 के अनुसार, देश में युवाओं की बड़ी आबादी या तो बेरोज़गार है या अनौपचारिक, कम आय और असुरक्षित कामों में जुटी है। ग्रामीण इलाकों में बड़ी संख्या में युवा स्वयं-रोज़गार में तो हैं, लेकिन उनमें से अनेक परिवारिक खेती या होम-आधारित काम में बिना उचित मज़दूरी के लगे हुए हैं, जिसे "अवैतनिक पारिवारिक कार्य" की श्रेणी में रखा जाता है। इसके विपरीत, अनेक सर्वेक्षण यह दर्शाते हैं कि बड़ी संख्या में ग्रामीण युवा कृषि को "अल्प प्रतिष्ठा" या "नीची आय वाला" क्षेत्र समझकर शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन करना चाहते हैं। यह विरोधाभास स्पष्ट रूप से दिखाता है कि जब तक कृषि को सम्मानजनक आय, स्थिर रोजगार और आधुनिक अवसरों वाला क्षेत्र नहीं बनाया जाएगा, तब तक युवा इसमें बने नहीं रहेंगे।

कृषि क्षेत्र में युवाओं के सामने कठिनाइयां-परंपरागत रूप से, कृषि क्षेत्र को निम्न आय वाला, उच्च जोखिम वाला और कम सम्मानित माना जाता रहा है। **युवा इससे भागते हैं क्योंकि उन्हें इन निम्न कारणों से निराशा होती है:**

कम बिक्री और आय की अस्थिरता: कृषि से प्राप्त होने वाली आय कम और मौसमी होती है, जो युवा बेरोज़गारी की उच्च दर का एक प्रमुख कारण है।

भूमि और पूंजी तक पहुँच की कमी: अधिकांश युवा भूमिहीन हैं या विरासत भूमि पर किराए से खेती करते हैं। उनके पास आधुनिक तकनीक में निवेश करने या कृषि उद्यम शुरू करने हेतु पर्याप्त फंड या ऋण नहीं होता।

कौशल और प्रौद्योगिकी के बीच का अंतर: पारंपरिक कृषि शिक्षा एवं तरीके आधुनिक कृषि उद्योग, डिजिटल खेती और मूल्य संवर्धन की आवश्यकताओं को नहीं पूरा करते।

बुनियादी ढांचे की कमी: ग्रामीण इलाकों में कमजोर भौतिक बुनियादी ढाँचा, भंडारण सुविधाओं की कमी, और बाजार तक सीमित पहुँच कृषि को घाटे में डाल देती है।

कृषि नीतियों का महत्व: संरचना और मार्गदर्शन: कृषि नीति एक विस्तृत ढांचा है जिसके भीतर सरकारें भूमि, सिंचाई, बीज, खाद, बाजार, समर्थन मूल्य, कृषि निवेश, प्रशिक्षण, अनुसंधान, और जोखिम प्रबंधन से जुड़े निर्णय करती हैं। जब इन नीतियों में युवाओं के लिए विशेष प्रावधान शामिल किए जाते हैं, तब उन्हें "युवा:संवेदी" या "युवा:मुखी" कृषि नीतियाँ कहा जाता है।

1. युवाओं के लिए भूमि और संसाधनों की उपलब्धता

भूमि कृषि श्रम की मूल भावना है, लेकिन युवा-खासकर ग्रामीण युवा और महिलाएं-भूमि के स्वामित्व और उपयोग अधिकारों से महरूम रहते हैं। अधिकतर भूमि पिता या पूर्वजों के नाम पर दर्ज है, जिससे युवा खुद ऋण, बीमा या किसी योजना का सीधा फायदा नहीं उठा पाते।

नीतिगत स्तर पर निम्नलिखित प्रयास महत्वपूर्ण हैं:

* संयुक्त नाम के तहत भूमि पंजीकरण (जैसे माता-पिता के साथ युवा बेटों-बेटियों के नाम जोड़ना) ताकि अगली पीढ़ी को वैध अधिकार प्राप्त हो सके। * भूमि किराए पर देने के लिए प्रोत्साहन, ताकि जो लोग अधिक भूमि रखते हैं, वे युवाओं को सुरक्षित अनुबंध के साथ भूमि उपलब्ध करा सकें। * समूहिक कृषि- स्वयं सहायता समूह, किसान उत्पादक संगठन या युवा क्लबों द्वारा सामूहिक तरीके से भूमि का अधिग्रहण करके आधुनिक कृषि करना।

2. कौशल प्रशिक्षण और विकास सेवाएं- कृषि को नवीनतम तकनीक से सुसज्जित और आकर्षित करने हेतु शिक्षा और प्रशिक्षण में व्यापक निवेश आवश्यक है।

अनुभवात्मक शिक्षा इकाइयाँ: उच्च कृषि शिक्षा में विद्यार्थियों को 'पढ़ाई के साथ कमाई' के अवसर प्रदान करने के लिए कृषि महाविद्यालयों में अनुभवात्मक शिक्षा इकाइयों की संख्या में 50% तक वृद्धि की गई है।

आर्या परियोजना : यह पायलट परियोजना भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने शुरू की है, जिसका उद्देश्य युवाओं में कृषि में रुचि बढ़ाना है। यह कृषि विज्ञान केंद्रों के माध्यम से युवाओं को कृषि क्षेत्र में रोजगार-उन्मुख इकाई स्थापित करने का प्रशिक्षण और सहायता प्रदान करती है।

डिजिटल कृषि को बढ़ावा देना: ड्रोन, इंटरनेट ऑफ थिंग्स, और AI जैसी तकनीकों के प्रयोग को प्रोत्साहित करने हेतु सब्सिडी और प्रशिक्षण योजनाएं बनाना। यह ग्रामीण युवाओं हेतु में नए और आकर्षक रोजगार के अवसर उत्पन्न करता है।

3. उद्यमिता और वित्त तक पहुँच का आसान बनाना- युवा किसानों को "किसान" से "कृषि-उद्यमी" में परिवर्तित करने के लिए नीतियाँ अनिवार्य हैं।

युवा-उन्मुख ऋण नीतियाँ: मुद्रा योजना जैसे कार्यक्रमों के अंतर्गत कृषि-स्टार्टअप्स को सरल ऋण और अनुदान प्रदान करना। बैंकों को युवा कारोबारियों के लिए कम ब्याज दर पर, लचीले पुनर्भुगतान के विकल्पों के साथ ऋण जारी करने के लिए प्रोत्साहित करना।

एग्री-बिजनेस सेंटर की योजनाएँ: नाबार्ड की सहायता से एग्रीक्लीनिक और एग्रीबिजनेस सेंटर जैसी योजनाओं को प्रोत्साहित किया जा रहा है। यह योजना कृषि स्नातकों को इनपुट सप्लाई, कस्टम हायरिंग और कृषि परामर्श सेवाएँ प्रदान करने के लिए प्रशिक्षित करती है, ताकि वे उद्यमी बन सकें।

सब्सिडी और प्रोत्साहन: राज्य सरकारें, जैसे मध्य प्रदेश, डॉ. भीमराव अम्बेडकर कामधेनु योजना के तहत डेयरी इकाई स्थापित करने के लिए अनुसूचित जाति/जनजाति को 33% तक और अन्य वर्गों को 25% तक वित्तीय सहायता दी जा रही है जिसका उद्देश्य पशुपालन में युवाओं को स्थायी रोजगार प्रदान करना है।

4. मूल्य बढ़ाना और बाजार संबंध- सिर्फ उत्पादन पर जोर देने से किसानों को अधिक लाभ नहीं मिलता है। नीतियों को युवाओं को कृषि-खाद्य प्रणालियों के नए विकास से जोड़ना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में छोटी और मध्यम खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों (जैसे, मखाना प्रसंस्करण, डेयरी उत्पाद, फलों का जैम बनाना) की स्थापना के लिए तकनीकी और वित्तीय सहायता ,प्रदान करना। यह स्थानीय स्तर पर मूल्य संवर्धन करता है।

समर्थन मूल्य और फसल बीमा: प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना किसानों को वित्तीय सुरक्षा देती है, जिससे जोखिम घटता है। साथ ही, निश्चित और स्थिर बाजार मूल्य सुनिश्चित करने वाली नीतियाँ युवा किसानों में आत्मविश्वास पैदा करती हैं।

जैविक और प्राकृतिक खेती का समर्थन: जैविक खेती और कृषि पारिस्थितिकी को प्रोत्साहित करना। कृषि पारिस्थितिकी न केवल टिकाऊ विकल्प प्रस्तुत करती है, बल्कि फसलों की विविधता और प्राकृतिक कीट प्रबंधन के जरिए युवाओं हेतु नए, मूल्यवान बाजार भी तैयार करती है।

भारत में मुख्य नीतियाँ और कार्यक्रम : भारत सरकार के कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा युवाओं को कृषि से जोड़ने हेतु कई योजनाएँ चलायी जा रही हैं।

* **आर्या (कृषि में युवाओं को आकर्षित और बनाए रखना) :** ग्रामीण युवाओं को कृषि:आधारित व्यवसाय शुरू करने के लिए प्रशिक्षण, सहयोग और वित्तीय सहायता।

* **ए.सी. एवं ए.बी.सी : कृषि स्नातकों के लिए परामर्श सेवाएँ, एग्रो:इनपुट** की डीलरशिप, डेयरी/पोल्ट्री इकाई, कस्टम हायरिंग केंद्र आदि स्थापित करने में सहायता।

* **कृषि विज्ञान केंद्र , एस.एम.ए.एम.- कृषि यंत्रीकरण पर उप-मिशन, आरकेवीवाई:रफ्तार (स्टार्टअप)** : कौशल संवर्धन, यांत्रिकीकरण और नवाचार को बढ़ावा।

ताजा आंकड़े और परिणाम:

कार्यबल भागीदारी: अप्रैल-जून 2025 की तिमाही के आंकड़ों के अनुसार, ग्रामीण श्रमिकों की सबसे उच्च भागीदारी (पुरुष 44.6% और महिला 70.9%) कृषि क्षेत्र में निरंतर बनी हुई है।

स्वरोजगार में बढ़ोतरी: 2017-18 में स्वरोजगार 52.2% था, जो 2023-24 में बढ़कर 58.4% हो गया है। यह प्रवृत्ति दिखाती है कि युवा अब नौकरी पाने वालों की जगह उद्यमिता की ओर बढ़ रहे हैं, जिसे कृषि-व्यवसाय के माध्यम से प्रोत्साहित किया जा सकता है।

वैश्विक क्षमता: खाद्य और कृषि संगठन की एक रिपोर्ट यह प्रदर्शित करती है कि युवाओं की कृषि-खाद्य क्षेत्रों में सक्रियता से वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद में 1.4% तक की वृत्ति हो सकती है, जो भारत के लिए एक महत्वपूर्ण अवसर है।

चुनौतियाँ और भविष्य की पथनिर्देश

कई सकारात्मक प्रयासों के बावजूद कुछ प्रमुख समस्याएँ अभी भी मौजूद हैं: * कई योजनाओं की सूचना युवाओं तक नहीं पहुंचती या दस्तावेजी प्रक्रियाएं कठिन हैं। * भूमि सुधार, ग्रामीण ढांचे और बाज़ार सुधार की प्रगति कई क्षेत्रों में सुस्त है। * अनेक युवाओं हेतु कृषि अब भी "पहली पसंद" नहीं, बल्कि "आखिरी विकल्प" है; इस सोच को बदलने हेतु शिक्षा और सामाजिक संचार की जरूरत है।

निष्कर्ष: यदि कृषि नीतियाँ परंपरागत उत्पादन-केंद्रित दृष्टिकोण से परे बढ़कर युवाओं की आवश्यकताओं और इच्छाओं को प्राथमिकता देती हैं, तो कृषि क्षेत्र भारत जैसे देशों में युवा रोजगार का सबसे प्रमुख स्रोत बन सकता है। भूमि, वित्त, कौशल, तकनीक और बाज़ार–इन पाँच आधारों पर आधारित, युवा-उन्मुख कृषि नीति ढाँचा ना केवल बेरोज़गारी कम करेगा, बल्कि खाद्य सुरक्षा, ग्रामीण विकास और समावेशी आर्थिक वृद्धि को भी सुदृढ़ करेगा ।

डॉ. अनिल कुमार गिरि (सहायक प्राध्यापक) कृषि महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

डॉ. प्रदीप मिश्रा (सहायक प्राध्यापक) कृषि महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

डॉ. जी.डी. शर्मा सहायक प्राध्यापक, कृषि महाविद्यालय रीवा (म. प्र.)

डॉ. प्रमोद शर्मा पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

स्वच्छ दूध उत्पादन कैसे करें

परिचय

दूध एक भोज्य पदार्थ है जिसका संरक्षण अत्यंत सावधानी से करने की आवश्यकता है इसलिए इसे उत्पादन, भंडारण एवं परिवहन के दौरान अत्याधिक देखभाल की आवश्यकता पड़ती है। उच्च गुणवत्ता युक्त दुग्ध उत्पादन हेतु पशुओं को साफ-सुथरे पर्यावरण में रखना चाहिए । दूध की गुणवत्ता अच्छी होने से दुग्ध पदार्थों की गुणवत्ता भी अच्छी होती है। वर्तमान समय के बदलते हुए परिवेश में दूध के उत्पादन में गुणवत्ता का विशेष महत्व हो गया है। भारत वर्ष विश्व में दुग्ध उत्पादन में प्रथम स्थान प्राप्त कर चुका है। परंतु दूध की गुणवत्ता में हम अभी भी काफी पिछड़े हुए हैं। अतः अब यह आवश्यक है कि दूध उत्पादन के साथ-साथ उसकी गुणवत्ता पर भी विशेष ध्यान दिया जावे। दुग्ध उत्पादक स्तर पर दुधारू पशुओ के थन से निकले हुए दूध में औसतन एक हजार से दस हजार जीवाणु प्रति मि.ली. दूध में पाये जाते हैं जो कि दुग्ध समिति में आते-आते पचास हजार से पांच लाख जीवाणु प्रति मिली हो जाते हैं। यही जीवाणु दुग्ध सहकारी समिति स्तर से संघ के शीतलीकरण केंद्र अथवा दुग्ध संयंत्र तक आते-आते लगभग एक करोड़ जीवाणु प्रति मि.ली. की संख्या तक पहुंच जाते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि दूध के प्रति जागरूकता न होने के फलस्वरूप दूध की गुणवत्ता अत्यंत निम्न कोटि की हो जाती है।

स्वच्छ दूध

वह दूध जो पूर्णतः ताज़ा हो, जिसमें किसी भी प्रकार की गंदगी, रोगाणु (बैक्टीरिया), दुर्गंध, हानिकारक रसायन या मिलावट न हो तथा जिसे साफ-सुथरे पशु, स्वच्छ बर्तनों और स्वच्छ तरीकों से प्राप्त किया गया हो, स्वच्छ दूध कहलाता है। स्वच्छ दूध को आम तौर पर स्वस्थ पशुओं के थन से निकाला गया दूध के रूप में परिभाषित किया जाता है, जिसे स्वच्छ सूखी दूध दुहने वाली बाल्टी में एकत्र किया जाता है और जो धूल, गंदगी, मक्खियों, घास, गोबर जैसे बाहरी पदार्थों से मुक्त होता है आदि। स्वच्छ दूध की संरचना सामान्य होती है, इसमें प्राकृतिक दूध का स्वाद होता है, जीवाणुओं की संख्या कम होती है और यह मानव उपभोग के लिए सुरक्षित होता है।

स्वच्छ दूध की मुख्य विशेषताएँ

* दूध में गंदगी, बाल, धूल या कीड़े न हों। * दूध का स्वाद, गंध और रंग प्राकृतिक हो, उसमें खटास या दुर्गंध न हो। * इसमें हानिकारक जीवाणु (जैसे टाइफाइड, टीबी के बैक्टीरिया) न पनपें। * दूध स्वच्छ बर्तनों में दुहा और संग्रहित किया गया हो। * बिना पानी या किसी अन्य पदार्थ की मिलावट न हो।

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन क्यों जरूरी है ?

स्वस्थ गाय द्वारा स्त्रावित दूध पशु के अयन में तो जीवाणु मुक्त होता है परन्तु दुहने के समय, ठंडा करते समय अथवा भंडारण के समय यह गोबर, धूलकण, बालों एवं कीटाणुओं आदि से दूषित हो सकता है. दूध जीवाणुओं तथा फफूंद की वृद्धि के लिए एक बहुत अच्छा माध्यम है. अधिक गर्मी में ये जीवाणु तीव्रता से पनपते हैं तथा दूध एवं इसके उत्पादों को अत्याधिक क्षति पहुँचाते है, यदि स्वच्छ दुग्ध उत्पादन हेतु कुछ मूलभूत बातों पर ध्यान दिया जाए तो दूध की गुणवत्ता कम होने एवं इसे नष्ट होने से बचाया जा सकता है.

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन के लिए आवश्यक बातें

डेयरी शेड की साफ-सफ़ाई

स्वच्छ दूध उत्पादन के लिए डेयरी शेड की सफ़ाई और स्वच्छता बहुत आवश्यक है। यदि शेड गंदा रहेगा तो दूध में जीवाणु मिलकर उसकी गुणवत्ता को खराब कर देंगे। फ़र्श सीमेंट का और ढलानदार होना चाहिए ताकि पानी व मूत्र आसानी से नालियों में बह सके। रोज़ाना शेड की फ़र्श को पानी और फिनाइल से धोना चाहिए। नालियों में गंदगी जमा न होने दें, उन्हें नियमित रूप से साफ करें। गोबर को तुरंत हटाकर खाद गड्ढे में डालें। मूत्र को शेड में जमा न होने दें। पीने का पानी स्वच्छ और ताज़ा होना चाहिए। पानी की टंकियों और टब को रोज़ाना धोएं। शेड में पर्याप्त वेंटिलेशन और रोशनी होनी चाहिए। नमी न रहे ताकि मच्छर और मक्खियाँ न पनपें।

पशुओं की सफ़ाई

दूध दुहने से पहले पशुओं को साफ पानी से नहलाना चाहिए ताकि उन पर चिपके हुए गोबर व धूल कणों को हटाया जा सके. स्तनों को साफ करने के लिए पोटाशियम परमेगनेट के घोल का प्रयोग भी किया जा सकता है. धोने के बाद स्तनों को साफ कपड़े से पोंछ देना चाहिए, यदि स्तनों पर कोई घाव हो तो कीटाणुनाशक मल्हम का उपयोग करना चाहिए. दूध निकालते समय पशु शांत रहने चाहिएं, किसी अजनबी व्यक्ति के आगमन, कुत्ते के भोंकने व बिल्ली को देखने से दुधारू पशु डर जाते हैं जिससे दूध निकालना कठिन हो सकता है. शांत वातावरण में ऑक्सीटोसिन, कोर्टिसोल, प्रोलेक्टिन एवं ग्रोथ होर्मोनों का स्त्रावण सामान्य रहता है तथा पशु पूरा दूध निकलवाता है. इस दौरान धीमी आवाज के संगीत द्वारा वातावरण को अधिक शान्त बनाया जा सकता है. दूध प्रतिदिन निर्धारित समय पर ही दुहना चाहिए ताकि पशुओं को इसकी आदत हो जाए. दूध दुहते समय पशुओं को पौष्टिक आहार अथवा दाना आदि खिलाया जा सकता है ताकि वे दुग्ध दोहन की प्रक्रिया में ग्वाले के साथ सहयोग एवं सामंजस्य बनाए रखें.

ग्वाले की साफ-सफ़ाई

दुधारू पशुओं के साथ-साथ दूध दुहने वाले ग्वाले की साफ-सफ़ाई भी महत्वपूर्ण है। ग्वालों को अपने हाथ अच्छी तरह साफ पानी से धोकर ही दूध दुहना चाहिए। इन्हें अपने हाथों के नाखून भी काटने चाहिए ताकि पशुओं के स्तनों पर कोई घाव न बन सके। ग्वाले स्वस्थ होने चाहिए अन्यथा दूध के माध्यम से बीमारी फैलने का खतरा बना रहता है। दूध दुहते समय ग्वाले को थूकने या नाक साफ करने की आदत नहीं होनी चाहिए। इन्हें अपने सर पर एक सूती कपड़ा बाँधना चाहिए ताकि दूध में कोई बाल आदि न गिर सकें। दूध निकालते समय ग्वाले को शान्त रहना चाहिए ताकि बोलते समय उसकी आवाज से पशुओं को कोई व्यवधान न हो।

(4) दूध के बर्तनों की सफ़ाई

जिस बर्तन में दूध निकालना हो, उसे पानी व डिटर्जेंट से साफ करके पूर्व में ही सुखा कर तैयार रख लेना चाहिए। दूध को बड़े बर्तन में संगृहित करते समय मल-मल के कपड़े से छान लेना चाहिए। निकाला गया दूध छायादार व ठन्डे स्थान पर रखना चाहिए ताकि इसे जल्द खराब होने से बचाया जा सके। यदि दूध को किसी दूरस्थ स्थान पर स्थित डेयरी में प्रसंस्करण हेतु भेजना हो तो इसे शीत रखना आवश्यक है ताकि इसकी गुणवता अच्छी बनी रहे। दूध को ठंडा रखने के लिए पशुपालक अपनी क्षमतानुसार दूध के लिए छोटी या बड़ी टंकी उपयोग में ला सकते हैं। यदि संभव हो तो बर्फ से ठंडी होने वाली दूध की केन अथवा टंकी भी प्रयुक्त की जा सकती है।

दूध का भंडारण एवं परिवहन

दूध दुहते समय इसका तापमान पशु के शारीरिक तापमान के बराबर होता है । यदि इस तापमान पर दूध का भंडारण किया जाए तो अति शीघ्र खराब होने लगता है । अतः दूध का भंडारण करने से पूर्व इसे ठंडा करना चाहिए, ठंडा करने से दूध अधिक समय तक खराब नहीं होता। यदि परिवहन के समय दूध को ठंडा रखा जाए तो इसकी गुणवत्ता अच्छी बनी रहती है ।

स्वच्छ दूध उत्पादन के महत्वपूर्ण बिन्दु

- दुधारू पशुओं को दुग्ध दोहन हेतु साफ एवं सूखे स्थान पर रखा जाना चाहिये। • दुग्ध दोहन से पूर्व दुधारू पशु के आंचल एवं थनों को धोकर साफ कपड़े से पोछना चाहिए।
- दुग्ध दोहन के समय पशु को सूखा चारा नहीं खिलाना चाहिए।
- दुग्ध दोहन से पूर्व दोहन कर्ता को हाथों की सफाई अवश्य कर लेना चाहिए। • दूध के लिए स्टेनलेस स्टील का चौड़े मुंह का ढक्कन युक्त बर्तन, जिसकी सफाई ठीक से हो सके, का उपयोग करना चाहिए। • दुग्ध दोहन के पश्चात् थनों की सफाई हेतु टीट डिप का उपयोग करना चाहिए। • दुग्ध दोहन के आधे घंटे के अन्दर समिति में दूध पहुंचाना सुनिश्चित करना चाहिए। • दुग्ध परिवहन मार्गो का उचित निर्धारण कर कम से कम समय में दूध समिति के शीतकेन्द्र पर पहुंचाया जाना चाहिए। • दुग्ध उत्पादन के हर स्तर पर स्वच्छ दुग्ध उत्पादन हेतु जागरूकता अभियान चलाया जाना चाहिए। • उच्च गुणवत्ता आधारित दुग्ध प्रदाय हेतु प्रेरक प्रोत्साहन का प्रावधान रखना चाहिए। • दुग्ध दोहन के आधा घंटे बाद तक दुधारू पशु को बैठने नहीं देना चाहिए।

डॉ. आयुषी चौरसिया, डॉ. राजेश कुमार शर्मा
डॉ. क्षेमंकर श्रमण, डॉ. अक्षता पतंगराव रेणुशे
पशु भेषज एवं विष विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)
डॉ. विजय कुमार गोंड पशु उत्पादन भोज संस्थान, पूसा, डॉ. राजेंद्र प्रसाद केंद्रीय कृषि वि.वि., पूसा, समस्तीपुर (बिहार)

पशु स्वास्थ्य पर माइकॉटॉक्सिन का गंभीर खतरा: एक विस्तृत विश्लेषण

1: माइकॉटॉक्सिन का परिचय, उत्पत्ति, और वर्गीकरण: पशुओं का स्वास्थ्य, विशेष रूप से डेयरी और पोल्ट्री उद्योग की उत्पादकता, चारे की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। हालांकि, चारे की गुणवत्ता अक्सर एक "छिपे हुए खतरे" से प्रभावित होती है, जिसे माइकॉटॉक्सिन कहा जाता है। माइकॉटॉक्सिन वे विषैले द्वितीयक मेटाबोलाइट हैं जो कुछ विशिष्ट प्रकार की फफूंद द्वारा उत्पन्न होते हैं। ये फफूंद अनाज, भूसा, दाना, सिलेज, मूंगफली केक, और अन्य भोजन सामग्री को दूषित करती हैं। माइकॉटॉक्सिन बहुत कम मात्रा में भी पशुओं के स्वास्थ्य, वृद्धि, उत्पादन और प्रजनन क्षमता पर लंबे समय तक गंभीर असर डाल सकते हैं। इसके अतिरिक्त, ये दूध, मांस और अंडों में अवशेष छोड़कर मानव खाद्य सुरक्षा के लिए भी एक गंभीर खतरा पैदा करते हैं।

माइकॉटॉक्सिन उत्पादक फफूंद

तीन प्रमुख फफूंद प्रजातियाँ पशु चारे को दूषित करती हैं और माइकॉटॉक्सिन उत्पन्न करती हैं: ऐस्परजिलस गर्म और नमी वाले क्षेत्रों में भंडारण के दौरान विकसित होता है, फ्यूजेरियम मुख्य रूप से फील्ड क्रॉप्स (जैसे मक्का और जौ) में कटाई से पहले संक्रमण करता है और पेनिसिलियम आमतौर पर ठंडे और नमी वाले भंडारण की स्थिति में विकसित होता है।

माइकॉटॉक्सिन बनने के कारण

माइकॉटॉक्सिन का उत्पादन भौतिक, जैविक और मानव-जनित कारकों पर निर्भर करता है। भौतिक कारकों में उच्च नमी (आमतौर पर 14% से अधिक), 20°C से 40°C के बीच का तापमान, खराब वायुसंचार वाला भंडारण, और तापमान का उतार-चढ़ाव शामिल हैं। जैविक कारक वह परिस्थितियाँ हैं जहाँ फफूंद बीजाणुओं की उपस्थिति होती है, साथ ही कीट और कृमि संक्रमण भी होता है जो दाने को क्षति पहुँचाते हैं। इसके अलावा, पौधों का खराब स्वास्थ्य या कटाई के दौरान हुई क्षति भी इसमें योगदान देती है। मानव-जनित कारक माइकॉटॉक्सिन उत्पादन को बढ़ावा देते हैं, जिनमें असुरक्षित या अव्यवस्थित भंडारण, अनाज को पूरी तरह से न सुखाना (यानी, अधपका/अधसुखा अनाज), पुराने चारे का लंबे समय तक निरंतर उपयोग, और खराब सिलेज प्रबंधन शामिल है।

2: पशुओं और मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव, तथा आर्थिक नुकसान

विभिन्न पशुओं पर माइकॉटॉक्सिन के प्रभाव

माइकॉटॉक्सिन के प्रभाव पशु की प्रजाति, आयु, लिंग, खुराक की मात्रा, और टॉक्सिन के प्रकार पर निर्भर करते हैं।

1.डेयरी पशु: दूध उत्पादन में 10% से 40% तक कमी हो सकती है। प्रजनन समस्याएँ जैसे बार-बार गर्भधारण विफलता, भ्रूण मृत्यु, और डिम्बग्रंथि विकार। स्वास्थ्य जोखिम जैसे यकृत को नुकसान, प्रतिरक्षा दमन, और Aflatoxin M1 का दूध में स्राव। Aflatoxin M1 एक अत्यंत शक्तिशाली कैंसरजन्य पदार्थ है, जो सीधे मानव उपभोग के लिए खतरा है।

2.पोल्ट्री: उत्पादन में कमी जैसे अंडा उत्पादन में गिरावट, अंडों की गुणवत्ता में कमी, और फ़ीड रूपांतरण दर का खराब होना। स्वास्थ्य समस्याएँ: मृत्यु दर में वृद्धि, प्रतिरक्षा प्रणाली का दमन (जिससे अन्य रोगों का खतरा बढ़ता है), और पैरों में विकार हो सकता है।

पशुओं पर असर: कैसे पहचानें? :पशुओं में भूख कम लगना एक महत्वपूर्ण प्रारंभिक लक्षण है। इसके परिणाम स्वरूप, पशुओं के वजन में कमी आती है, और उनके दूध, अंडा, या मांस उत्पादन में लगातार गिरावट देखी जाती है। पशुओं में बार-बार दस्त या अन्य पाचन संबंधी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। प्रतिरक्षा प्रणाली कमजोर होने के कारण, पशु टीकाकरण के बावजूद भी बार-बार बीमार पड़ते हैं। प्रजनन क्षमता गंभीर रूप से प्रभावित होती है, जिससे बार-बार गर्भधारण में विफलता होती है और पशु गर्भ नहीं ठहरा पाते। माइकॉटॉक्सिन की अत्यधिक खुराक दिए जाने की स्थिति में, कभी-कभी पशु की अचानक मृत्यु भी हो सकती है। दूषित चारे को प्रत्यक्ष रूप से पहचानने के लिए उसमें फफूंद लगी गंध या हरा, काला, या सफेद पाउडरी लेयर (पाउडर जैसी परत) दिख सकती है।

मानव स्वास्थ्य पर माइकॉटॉक्सिन का प्रभाव

माइकॉटॉक्सिन अवशेषों के माध्यम से खाद्य श्रृंखला में प्रवेश करते हैं, जो मानव स्वास्थ्य के लिए एक अत्यंत गंभीर खतरा है। Aflatoxin M1 दूध में पाया जाने वाला सबसे खतरनाक अवशेष। यह विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा कैंसरजन्य है। Ochratoxin A किडनी को नुकसान पहुंचाता है। खाद्य और कृषि संगठन के अनुसार, विश्व में 25% से अधिक अनाज माइक्रोटॉक्सिन से प्रभावित होता है, जो वैश्विक खाद्य सुरक्षा के लिए एक बड़ा संकट है।

आर्थिक नुकसान

माइकॉटॉक्सिन की समस्या से वैश्विक पशुधन उद्योग को हर साल भारी नुकसान होता है। इसके मुख्य आर्थिक प्रभाव हैं: पशु उत्पादन (दूध, मांस, अंडा) में गिरावट। रोग, बीमारी, और मृत्यु दर में वृद्धि। माइकॉटॉक्सिन बाइंडर्स और उपचार की उच्च लागत। दूध और मांस जैसे खाद्य उत्पादों की अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में अस्वीकृति।

3: प्रभावी रोकथाम, नियंत्रण और प्रबंधन: टॉक्सिन बनने के बाद उसे पूरी तरह से हटाना असंभव होता है, इसलिए रोकथाम ही सबसे प्रभावी रणनीति है।

1. प्रबंधन संबंधी उपाय: भंडारण से पहले दाने को अच्छी तरह से सुखाएँ। नमी का स्तर 12-14% से नीचे बनाए रखना फफूंद वृद्धि को रोकता है। गोदामों और साइलो को साफ, सूखा, और कीट-रहित रखें। कीट क्षति से फफूंद संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है। चारे की नियमित रोटेशन सुनिश्चित करें ताकि पुराना चारा लंबे समय तक जमा न रहे।

2. सिलेज प्रबंधन: सिलेज को अच्छी तरह से दबाएँ ताकि उसमें से ऑक्सीजन बाहर निकल जाए। हवा की उपस्थिति फफूंद के लिए आदर्श होती है। साइलो को हवा-रोधी पैकेजिंग में या अच्छी तरह से कवर करके सील करें। अच्छे गुणवत्ता वाले बैक्टीरियल इनोकुलेंट का उपयोग किण्वन प्रक्रिया को जल्दी पूरा करने में मदद करता है।

3. चारे की जाँच: किसान और फ़ीड निर्माता दोनों को नियमित रूप से चारे और कच्चे माल की प्रयोगशाला में माइकॉटॉक्सिन के लिए जाँच करानी चाहिए। यह जोखिम का आकलन करने के लिए महत्वपूर्ण है। फफूंद लगे चारे को तुरंत अलग करें और नष्ट कर दें, उसे स्वस्थ पशुओं को न खिलाएँ।

उपचार

माइकॉटॉक्सिन को नष्ट करने के लिए सीधे तौर पर कोई 'एक दवा' नहीं है। उपचार की रणनीति मुख्य रूप से टॉक्सिन के अवशोषण को कम करने पर केंद्रित होती है। टॉक्सिन बाइंडर ऐसे पदार्थ हैं जिन्हें चारे में मिलाया जाता है। ये बाइंडर पाचन तंत्र में माइकॉटॉक्सिन के साथ मजबूत बंधन बनाते हैं, जिससे टॉक्सिन का पशु का अवशोषण कम हो जाता है और वे मल के साथ बाहर निकल जाते हैं। सामान्य बाइंडर Bentonite और HSCAS (Hydrated Sodium Calcium Aluminosilicates) विशेष रूप से अफ्लाटॉक्सिन को बांधने में प्रभावी होते हैं। यीस्ट सेल वॉल प्रोडक्ट्स जियरेलोन और ओक्राटॉक्सिन सहित विभिन्न टॉक्सिन को बांधने में प्रभावी माने जाते हैं। एंजाइमेटिक डिटॉक्सिफायर विशिष्ट एंजाइम होते हैं जो टॉक्सिन को गैर-विषैले यौगिकों में तोड़ देते हैं।

अन्य सहायक उपचार के लिए गंभीर मामलों में, पशु चिकित्सक की सलाह पर अन्य उपचार दिए जाते हैं: टॉक्सिन के कारण हुए नुकसान की भरपाई के लिए विटामिन और मिनरल सप्लीमेंट। यकृत (लिवर) को हुए नुकसान से उबरने में मदद करने के लिए लिवर टॉनिक। तत्काल प्रभाव के लिए, दूषित चारे को हटाकर साफ चारे पर स्विच करना।

निष्कर्ष: चारे में फफूंद और माइकॉटॉक्सिन एक अदृश्य और महंगा खतरा है। यह न केवल पशुओं को बीमार करता है और उनकी उत्पादकता को कम करता है, बल्कि खाद्य उत्पादों में अवशेष छोड़कर मानव स्वास्थ्य को भी खतरे में डालता है। प्रभावी रोकथाम के लिए सुरक्षित भंडारण, नियमित परीक्षण, वैज्ञानिक चारा प्रबंधन, और उचित टॉक्सिन बाइंडर के उपयोग का अनुपालन पशुधन उद्योग की स्थिरता और लाभप्रदता के लिए अत्यावश्यक है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

✍ **अरुण** एम.एससी. (कृषि), मंदसौर वि.वि., मंदसौर
✍ **नरेन्द्र पाटीदार** एम.एससी. (कृषि), मंदसौर विश्वविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
✍ **डॉ. अंकित कुमार सिंह** मंदसौर विश्वविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)

भारत में प्राकृतिक खेती: 2025 में नवीनतम परिदृश्य एवं वैश्विक संदर्भ

परिचय

भारत की अर्थव्यवस्था और सामाजिक ताने-बाने की रीढ़ कृषि है। दशकों से रासायनिक खादों व कीटनाशकों के अंधाधुंध इस्तेमाल ने मिट्टी की उर्वरा शक्ति को नुकसान पहुँचाया है, मानव स्वास्थ्य को जोखिम में डाला है और पारिस्थितिकी को असंतुलित किया है। इन्हीं चुनौतियों के समाधान के रूप में प्राकृतिक खेती एक क्रांतिकारी विकल्प के रूप में उभरी है, जिसे अब राष्ट्रीय स्तर पर अभियान के तौर पर आगे बढ़ाया जा रहा है। यह पद्धति रसायन-मुक्त होने के साथ-साथ भारत की समृद्ध कृषि परंपरा पर आधारित है और आधुनिक पारिस्थितिकी विज्ञान के सिद्धांतों से जुड़ी है। यह फसलों, पेड़ों और पशुधन को एक साथ लाकर जैव विविधता को बढ़ावा देती है तथा जैविक पदार्थों के पुनर्चक्रण पर निर्भर करती है। इससे बाहरी इनपुट पर निर्भरता घटती है, लागत कम होती है और ग्रामीण रोजगार व आय बढ़ाने की संभावना बनती है।

प्राकृतिक खेती: सार एवं सिद्धांत

प्राकृतिक खेती एक ऐसी कृषि प्रणाली है जो पूर्णतः रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों का बहिष्कार करती है। इसके स्थान पर किसान गोबर, गोमूत्र, पौधों के अर्क जैसे स्थानीय एवं खेत पर ही तैयार संसाधनों (जीवामृत, बीजामृत, घनजीवामृत आदि) का उपयोग करते हैं। इसका मुख्य लक्ष्य मिट्टी के स्वास्थ्य को पुनर्जीवित करना, पर्यावरण को संरक्षित करना और पोषण से भरपूर फसलों का उत्पादन करना है। इसके मूल सिद्धांतों में भूमि की जुताई न करना, मिट्टी को ढक कर रखना (मल्चिंग), फसल विविधता अपनाना और प्रकृति के साथ सहयोग करना शामिल है।

भारत एवं विश्व में प्राकृतिक/जैविक खेती का विस्तार: एक आँकड़ों के आईने में

वैश्विक परिदृश्य: विश्व स्तर पर जैविक कृषि के अंतर्गत लगभग 7.64 करोड़ हेक्टेयर भूमि है (2023 के आँकड़े)। अग्रणी देशों में ऑस्ट्रेलिया (3.6 करोड़ हेक्टेयर), अर्जेंटीना (86 लाख हेक्टेयर) और स्पेन (27 लाख हेक्टेयर) शामिल हैं। भारत विश्व के शीर्ष जैविक उत्पादक देशों में से एक है।

शेष विश्व: 40.3% हिस्सेदारी अफ्रीका, कनाडा, लैटिन अमेरिका के अन्य देशों और एशिया के अन्य हिस्सों सहित दुनिया के बाकी हिस्सों को दर्शाती है, जो तेजी से इस क्षेत्र में आगे बढ़ रहे हैं।

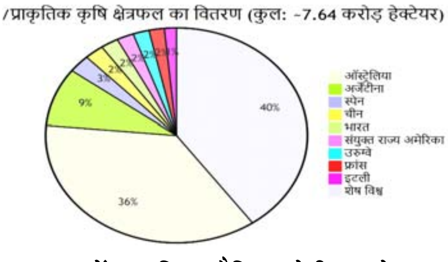

भारत में प्राकृतिक/जैविक खेती का क्षेत्रफल: भारत में वर्ष 2024 तक लगभग 6.6 मिलियन हेक्टेयर (66 लाख हेक्टेयर) क्षेत्र जैविक प्रमाणन के अंतर्गत है, जिसमें प्राकृतिक खेती एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। राष्ट्रीय प्राकृतिक कृषि मिशन (NMNF) का लक्ष्य 2025-26 तक इसे और बढ़ाना है।

* **राज्यवार प्रगति (अनुमानित डेटा, 2024 के आधार पर):**

* **मध्य प्रदेश:** लगभग 12 लाख हेक्टेयर के साथ अग्रणी।

* राजस्थान: लगभग 9 लाख हेक्टेयर।

* महाराष्ट्र: लगभग 7.5 लाख हेक्टेयर।

* **उत्तर प्रदेश:** लगभग 6.5 लाख हेक्टेयर।

* **आंध्र प्रदेश:** "आंध्र प्रदेश सामुदायिक प्राकृतिक कृषि" (APCNF) के तहत लगभग 8 लाख किसान प्राकृतिक खेती से जुड़े हैं, जो इसे दुनिया के सबसे बड़े कृषि पारिस्थितिकी कार्यक्रमों में से एक बनाता है।

* **हिमाचल प्रदेश:** प्रदेश सरकार ने 2022 तक 1.5 लाख किसानों को प्राकृतिक खेती से जोड़ने का लक्ष्य पूरा किया।

* **गुजरात, कर्नाटक, ओडिशा:** इन राज्यों में भी लाखों हेक्टेयर में प्राकृतिक खेती को बढ़ावा दिया जा रहा है।

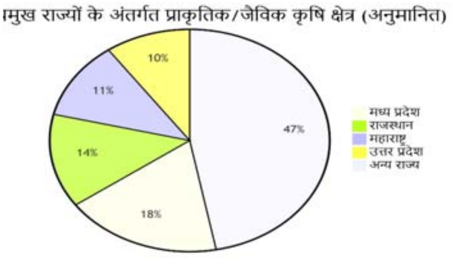

भारत में प्रमुख राज्यों के अंतर्गत प्राकृतिक/जैविक कृषि क्षेत्र (हेक्टेयर में) – एक दृश्य

नोट: यह आँकड़े विभिन्न सरकारी रिपोर्टों व समाचारों पर आधारित अनुमानित हैं, जो प्राकृतिक व जैविक कृषि को संयुक्त रूप से दर्शाते हैं।

राष्ट्रीय प्राकृतिक कृषि मिशन (NMNF): एक ढाँचागत पहल

इस मिशन को रु. 2,481 करोड़ के बजट के साथ शुरू किया गया है, जिसके प्रमुख लक्ष्य हैं:

* 1 करोड़ किसानों को प्राकृतिक खेती से जोड़ना।

* 15,000 गाँवों में क्लस्टर-आधारित मॉडल लागू करना।

* 10,000 जैव-इनपुट संसाधन केंद्र स्थापित करना ताकि किसानों को जीवामृत, बीजामृत जैसी सामग्री आसानी से मिल सके।

* प्राकृतिक उत्पादों के लिए एक सरल प्रमाणन एवं ब्रांडिंग प्रणाली विकसित करना।

भविष्य की राह: समेकित विकास की ओर

प्राकृतिक खेती को टिकाऊ बनाने के लिए निम्नलिखित कदम महत्वपूर्ण होंगे:

प्रमाणन एवं बाजार पहुँच: 'जीरो बजट प्राकृतिक फार्मिंग' या 'भारतीय प्राकृतिक' जैसे विश्वसनीय ब्रांड विकसित करके उपभोक्ता भरोसा और बेहतर मूल्य सुनिश्चित करना।

ज्ञान का प्रसार: किसान-से-किसान (Farmer-to-Farmer) प्रशिक्षण मॉडल, स्थानीय प्राकृतिक खेती चैंपियन्स और मोबाइल एप्स के जरिए जानकारी का प्रवाह बढ़ाना।

तकनीक एवं परंपरा का मेल: ड्रोन तकनीक से जैविक कीटनाशकों का छिड़काव, मृदा स्वास्थ्य कार्ड डिजिटलीकरण, और पारंपरिक बीज संरक्षण को बढ़ावा देना।

मूल्य संवर्धन: प्राकृतिक उत्पादों की प्रोसेसिंग, पैकेजिंग और सीधे बाजार (फार्मर-टू-कंज्यूमर) से जोड़कर किसानों की आय बढ़ाना।

निष्कर्ष: प्राकृतिक खेती अब भारत की कृषि नीति का एक प्रमुख स्तंभ बन चुकी है। यह सिर्फ एक उत्पादन पद्धति नहीं, बल्कि पर्यावरणीय स्थिरता, आर्थिक व्यवहार्यता और सामाजिक न्याय को एक साथ जोड़ने वाला एक समग्र दर्शन है। हालाँकि प्रमाणन, बाजार संपर्क और बड़े पैमाने पर जागरूकता जैसी चुनौतियाँ अभी बाकी हैं, लेकिन केंद्र व राज्य सरकारों की पहल, किसानों की बढ़ती रुचि और उपभोक्ताओं में स्वस्थ भोजन के प्रति जागरूकता एक उज्ज्वल भविष्य की ओर इशारा करती है। प्राकृतिक खेती भारत को एक ऐसी कृषि क्रांति की ओर ले जा रही है जो मिट्टी, किसान और स्वास्थ्य : तीनों के लिए समृद्धि लाने का वादा करती है।

कृषि वस्तुओं में मूल्य अस्थिरता: कारण और शमन रणनीतियां

अंकिता साहू सहायक प्राध्यापक एवं अनुभागाध्यक्ष, कृषि अर्थशास्त्र विभाग, कृषि महाविद्यालय इंदौर (म.प्र.)

देवाशीष मीणा एम.एससी. अंतिम वर्ष के छात्र, कृषि अर्थशास्त्र विभाग, कृषि महाविद्यालय, इंदौर, (म.प्र.)

आदित्य सिंह, नेहा द्विवेदी अतिथि शिक्षक, कृषि अर्थशास्त्र विभाग, कृषि महाविद्यालय, इंदौर, (म.प्र.)

परिचय: कृषि बाजारों में मूल्य अस्थिरता का तात्पर्य आपूर्ति, मांग और बाहरी कारकों में भिन्नता के कारण वस्तुओं की कीमतों में होने वाले तीव्र और अप्रत्याशित उतार-चढ़ाव से है। इस घटना का वैश्विक और भारतीय दोनों संदर्भों में महत्वपूर्ण आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव पड़ता है। इसके कारणों में आपूर्ति-मांग असंतुलन, मौसम संबंधी घटनाएं, बाजार अटकलें, वैश्विक आर्थिक कारक, सरकारी नीतियां और यूक्रेन-रूस युद्ध जैसे भू-राजनीतिक व्यवधान शामिल हैं। किसानों को आय अस्थिरता का सामना करना पड़ता है, उपभोक्ताओं को खाद्य मुद्रास्फीति झेलनी पड़ती है और अर्थव्यवस्थाओं की प्रतिस्पर्धात्मकता कम हो जाती है। शमन उपायों में वायदा अनुबंध, फसल बीमा, विविधीकरण, अवसंरचना विकास, पारदर्शी बाजार जानकारी और जलवायु-लचीले तरीके शामिल हैं। एक संतुलित दृष्टिकोण मूल्य स्थिरता और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करता है कृषि वस्तुओं की अनूठी विशेषताएं–मौसमी प्रकृति, नाशवानता, सीमित भंडारण, भारीपन (परिवहन और भंडारण को जटिल बनाने वाली बड़ी मात्रा), कीटों का प्रकोप और प्राकृतिक आपदाएं–अस्थिरता को बढ़ाती हैं। यह लेख वैश्विक और भारतीय बाजारों में प्रमुख वस्तुओं (गेहूं, चना, सरसों, कपास और प्याज) के लिए 2020-2024 तक के मूल्य रुझानों का विश्लेषण करता है।

वैश्विक स्तर: गेहूं, चना, सरसों, कपास और प्याज सहित प्रमुख कृषि उत्पादों की कीमतों मे, कपास की कीमतों में सबसे अधिक उतार-चढ़ाव देखा गया है, जिसकी शुरुआत कोविड-19 महामारी से हुई, जिसके कारण निर्यात में कमी आई और कीमतों में अचानक वृद्धि हुई। इसके बाद, अमेरिका-चीन व्यापार नीतियों के कारण कपास बाजारों पर असर पड़ा और फिर यूक्रेन-रूस युद्ध के कारण व्यापार में व्यवधान आया, जिससे कीमतों में और भी तेजी आई। सरसों की कीमतों में कोविड-19 के दौरान ताड़ के तेल के निर्यात में कमी के कारण वृद्धि हुई, लेकिन बाद में गिरावट आई। 2023 के बाद, यूक्रेन-रूस युद्ध ने सूरजमुखी तेल के निर्यात को कम कर दिया, जिसकी आपूर्ति मुख्य रूप से इन्हीं देशों द्वारा की जाती थी, जिससे सरसों की कीमतों पर और भी प्रभाव पड़ा। गेहूं और चना सहित अन्य फसलों की कीमतों में कोविड-19 और यूक्रेन-रूस युद्ध के कारण मामूली उतार-चढ़ाव देखा गया। बढ़ती वैश्विक जनसंख्या और खपत ने कृषि उत्पादों की कीमतों में लगातार वृद्धि की है।

भारतीय स्तर: भारत में, कोविड-19 महामारी और यूक्रेन-रूस युद्ध के कारण वस्तुओं की कीमतों में उतार-चढ़ाव आया। कोविड-19 के बाद बढ़ी मांग और अमेरिका-चीन व्यापार संबंधों में तनाव के कारण 2022 में कपास की कीमतों में उछाल आया। कोविड-19 के दौरान पाम के तेल के आयात में कमी के कारण सरसों की कीमतों में शुरू में वृद्धि हुई, लेकिन 2022 के बाद आयात में वृद्धि से कीमतें स्थिर हुई और कम हो गई। गेहूं और चने की कीमतों में शुरू में कोविड-19 के कारण हुई बाधाओं के चलते वृद्धि हुई, जिसके बाद यूक्रेन और रूस से आपूर्ति में कमी के कारण वैश्विक मांग में वृद्धि हुई। भारत द्वारा गेहूं के निर्यात पर लगे प्रतिबंध को हटाने से कीमतों में और वृद्धि हुई।

बाजार पर प्रभाव

1. **किसानों के बारे में:** आय में अस्थिरता, मजबूरी में बिक्री, उत्पादन नियोजन में कठिनाई, ऋण का बोझ, मनोवैज्ञानिक तनाव।
2. **उपभोक्ताओं पर:** खाद्य मुद्रास्फीति, पौष्टिक भोजन तक पहुंच में कमी, घरेलू खर्च में वृद्धि, आहार में असमानता।
3. **व्यापारियों और प्रसंस्करणकर्ताओं पर:** खरीद में अनिश्चितता, उच्च लेनदेन लागत, प्रतिस्पर्धात्मकता में कमी, निवेश में हिचकिचाहट।
4. **अर्थव्यवस्था पर:** मुद्रास्फीति का दबाव, निर्यात प्रतिस्पर्धा में कमी, नीतिगत अस्थिरता, सार्वजनिक वित्त पर दबाव।
5. **निवेश पर:** निजी निवेश को हतोत्साहित करना, आधुनिकीकरण में बाधा, विदेशी निवेश में कमी, ग्रामीण विकास में बाधा उत्पन्न करना।

मूल्य अस्थिरता के कारण

1. **आपूर्ति और मांग की गतिशीलता:** अधिक उत्पादन से कीमतें कम होती हैं, जबकि कमी से कीमतें बढ़ती हैं।
2. **मौसम और जलवायु संबंधी घटनाएं:** सूखा, बाढ़ और बेमौसम बारिश से पैदावार कम हो जाती है।
3. **बाजार सट्टा:** व्यापारियों की सट्टा गतिविधियाँ कृत्रिम मांग या घबराहट में बिक्री पैदा करती हैं।
4. **वैश्विक आर्थिक कारक:** मुद्रास्फीति, मुद्रा में उतार-चढ़ाव और व्यापार नीतियां वैश्विक कीमतों को प्रभावित करती हैं।
5. **तकनीकी प्रगति:** उच्च उपज वाले बीज या सिंचाई के कारण अस्थायी रूप से अधिक आपूर्ति हो सकती है, जिससे कीमतें कम हो सकती हैं।
6. **सरकारी नीतियां:** मूल्य समर्थन नीतियां (न्यूनतम समर्थन मूल्य या एमएसपी), आयात/निर्यात प्रतिबंध, शुल्क और कोटा के कारण उपलब्धता और कीमतों में अचानक बदलाव, अचानक लगाए गए प्रतिबंध (जैसे गेहूं, प्याज या चावल के निर्यात पर)।
7. **परिवहन और अवसंरचना:** खराब सड़कें और भंडारण सुविधाएं, ईंधन की कीमतों में वृद्धि, वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला में व्यवधान (जैसे, बंदरगाहों का अवरुद्ध होना, कंटेनरों की कमी)।
8. **सूचना प्रवाह:** अधूरी या विलंबित बाजार जानकारी, अफवाहें, फर्जी खबरें, या उत्पादन और स्टॉक डेटा में पारदर्शिता की कमी।
9. **अन्य कारक:** भू-राजनीतिः व्यापार युद्ध (जैसे, अमेरिका-चीन सोयाबीन विवाद), यूक्रेन-रूस युद्ध (गेहूं, मक्का और उर्वरक निर्यात बाधित), कोविड-19 महामारी।

जोखिम कम करने की रणनीतियाँ

1. **जोखिम प्रबंधन उपकरण:** वायदा और विकल्प अनुबंध किसानों, व्यापारियों और प्रसंस्करणकर्ताओं को भविष्य के लेन-देन के लिए कीमतों को तय करने में मदद करते हैं, जिससे अनिश्चितता कम होती है।फसल बीमा किसानों को मौसम की मार, कीटों और बीमारियों से होने वाले नुकसान से बचाता है। यह न्यूनतम आय सुरक्षा सुनिश्चित करता है और कर्ज के जोखिम को कम करता है।
2. **बेहतर कृषि पद्धतियाँ:** मिश्रित कृषि और सतत कृषि पद्धतियाँ जैसे जैविक खेती, एकीकृत कीट प्रबंधन और संरक्षण कृषि जैसी तकनीकें मिट्टी की उर्वरता और स्थिर पैदावार बनाए रखती हैं, जिससे अस्थिरता के प्रति संवेदनशीलता कम हो जाती है।
3. **बाजार संबंधी जानकारी और पारदर्शिता:**

समय पर डेटा और जानकारी: मोबाइल ऐप, डिजिटल बाजार और सरकारी पोर्टल किसानों को कीमतों, मांग और मौसम के पूर्वानुमान पर वास्तविक समय में अपडेट दे सकते हैं।डेटा संग्रह और विश्लेषण में निवेश (सरकार, सहकारी समितियों और निजी संस्थाओं द्वारा) पारदर्शिता में सुधार करता है, जिससे अफवाहों पर आधारित अटकलों में कमी आती है।

4. **अवसंरचना विकास:** ग्रामीण सड़कों, शीत भंडारण, गोदामों और प्रसंस्करण इकाइयों के निर्माण से फसल कटाई के बाद होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है और विश्वसनीय सिंचाई मानसून की बारिश पर निर्भरता को कम करती है और उत्पादन के स्तर को स्थिर बनाए रखने में मदद करती है।
5. **व्यापार नीतियां:** खुली व्यापार नीतियां सीमाओं के पार कृषि उत्पादों के सुचारू प्रवाह की अनुमति देती हैं, जिससे आपूर्ति-मांग असंतुलन संतुलित होता है।सरकारें अनाज का भंडारण कर सकती हैं और कमी के दौरान कीमतों को स्थिर करने और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए उन्हें जारी कर सकती हैं।
6. **सरकारी हस्तक्षेप:** एमएसपी (न्यूनतम समर्थन मूल्य), खरीद और सार्वजनिक वितरण प्रणाली जैसे तंत्र किसानों और उपभोक्ताओं दोनों की रक्षा करते है सब्सिडी वाले उर्वरक, बीज, बिजली और ऋण किसानों की लागत को कम करते हैं, जिससे उन्हें कीमतों में उतार-चढ़ाव का सामना करने में मदद मिलती है।
7. **अनुसंधान और नवाचार:** सूखा प्रतिरोधी, कीट प्रतिरोधी और उच्च उपज वाली किस्मों का विकास, सटीक खेती, ड्रोन, रिमोट सेंसिंग और एआई के उपयोग से उत्पादन संबंधी जोखिम कम होते हैं।
8. **वैश्विक समन्वय:** प्रमुख खाद्य उत्पादक देशों के बीच अंतर्राष्ट्रीय समन्वय संकट के दौरान निर्यात प्रतिबंधों, जमाखोरी और घबराहट में खरीदारी को रोकने में मदद करता है और एफएओ, डब्ल्यूटीओ और अन्य वैश्विक निकाय वैश्विक खाद्य आपूर्ति श्रृंखलाओं की निगरानी और प्रबंधन कर सकते हैं।
9. जलवायु-प्रतिरोधी कृषि का अनुकूलन कृषि वानिकी, जल-कुशल फसलों, सूखा-सहनशील किस्मों और पूर्व चेतावनी प्रणालियों को अपनाने से किसानों को अप्रत्याशित मौसम से निपटने में मदद मिलती है। यह दीर्घकालिक स्थिरता को बढ़ावा देता है और जलवायु परिवर्तन से प्रेरित अस्थिरता को कम करता है।
10. **उपभोक्ता शिक्षा:** खाद्य अपशिष्ट में कमी, संतुलित आहार के प्रति जागरूकता।

निष्कर्ष: कृषि उत्पादों में मूल्य अस्थिरता आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक चुनौतियाँ पैदा करती है, जो किसानों, उपभोक्ताओं, व्यापारियों और अर्थव्यवस्थाओं को प्रभावित करती है। जबकि प्राकृतिक और बाज़ार बल उतार-चढ़ाव का कारण बनते हैं, अत्यधिक अस्थिरता नियोजन, बाज़ार दक्षता और खाद्य सुरक्षा को बाधित करती है। स्थिरीकरण के लिए बुनियादी ढांचे को मजबूत करना, विविधीकरण को बढ़ावा देना, वायदा बाज़ारों को प्रोत्साहित करना और समय पर सरकारी हस्तक्षेप सुनिश्चित करना आवश्यक है। बाज़ार संकेतों को विकृत किए बिना कीमतों को स्थिर करने वाला एक संतुलित दृष्टिकोण कृषि क्षेत्र में लचीलापन और स्थिरता के लिए आवश्यक है।

गायों में भ्रूण स्थानांतरण प्रौद्योगिकी
(EMBRYO TRANSFER TECHNOLOGY)

डॉ. शशांक विश्वकर्मा
डॉ. अभिषेक बिसेन, डॉ. पुष्कर शर्मा
पशु मादा रोग एवं प्रसूति विज्ञान विभाग, नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय जबलपुर-482001 (म.प्र.)

डॉ. रेणुका मेवाड़े, डॉ. संजय शुक्ला
स्वाति त्रिपाठी, अंजू नायक, वंदना गुप्ता
पशु चिकित्सा सूक्ष्म जीव विज्ञान विभाग, नानाजी देशमुख पशुचिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय जबलपुर- 482001 (म.प्र.)

डॉ. पंकज कुमार उमर, डॉ. ज्योति पशु चिकित्सा औषध एवं विष विज्ञान विभाग, नानाजी देशमुख पशुचिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय जबलपुर-482001 (म.प्र.)

डॉ. अंजुल वर्मा पशु शल्य चिकित्सा एवं क्ष-रश्मि विभाग, नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर-482001 (म.प्र.)

भ्रूण स्थानांतरण प्रौद्योगिकी (Embryo Transfer Technology; ETT) आधुनिक पशु प्रजनन विज्ञान की एक अत्यंत महत्वपूर्ण और उन्नत जैव-प्रौद्योगिकीय तकनीक है। इस तकनीक का मुख्य उद्देश्य उच्च आनुवंशिक क्षमता वाली गायों से अधिक संख्या में उत्कृष्ट संतानों का उत्पादन करना तथा कम समय में पशुधन की आनुवंशिक गुणवत्ता में सुधार करना है। पारंपरिक प्रजनन पद्धतियों की तुलना में भ्रूण स्थानांतरण तकनीक अधिक प्रभावी, तीव्र और वैज्ञानिक मानी जाती है। सामान्य परिस्थितियों में एक गाय अपने जीवनकाल में सीमित संख्या में ही बछड़े उत्पन्न कर सकती है। भ्रूण स्थानांतरण तकनीक इस जैविक सीमा को पार करने में सहायक होती है। इस प्रक्रिया में एक श्रेष्ठ आनुवंशिक गुणों वाली दाता गाय (Donor cow) से भ्रूण प्राप्त कर उन्हें समान प्रजनन अवस्था में आई हुई अन्य स्वस्थ गायों (Recipient cows) के गर्भाशय में स्थानांतरित किया जाता है। इस प्रकार एक ही दाता गाय से एक वर्ष में अनेक संतानों का उत्पादन संभव हो जाता है। दाता गाय का चयन अत्यंत सावधानीपूर्वक किया जाता है। इसमें उच्च दुग्ध उत्पादन, अच्छी प्रजनन क्षमता, सामान्य प्रजनन चक्र, रोग-मुक्त स्थिति तथा उत्कृष्ट शारीरिक संरचना जैसे गुणों का होना आवश्यक है। वहीं प्राप्तकर्ता गाय का मुख्य कार्य भ्रूण को धारण करना और स्वस्थ गर्भावस्था बनाए रखना होता है, इसलिए उसमें अच्छा शारीरिक स्वास्थ्य और सामान्य गर्भाशय होना आवश्यक है। भ्रूण प्राप्त करने के लिए दाता गाय में हार्मोनल उपचार द्वारा सुपरओव्यूलेशन कराया जाता है। इसमें फॉलिकल स्टिमुलेटिंग हार्मोन (FSH) या अन्य हार्मोन का उपयोग कर एक ही हीट चक्र में अनेक अंडाणुओं के विकास को प्रेरित किया जाता है। इसके बाद श्रेष्ठ सांड के सीमेन से कृत्रिम गर्भाधान किया जाता है, जिससे अनेक अंडाणु निषेचित हो सकें। कृत्रिम गर्भाधान के लगभग 6-7 दिन बाद, जब भ्रूण ब्लास्टोसिस्ट अवस्था में होता है, तब विशेष नॉन-सर्जिकल फ्लशिंग तकनीक द्वारा भ्रूणों को गर्भाशय से एकत्र किया जाता है। यह प्रक्रिया सुरक्षित, कम दर्द वाली और बार-बार की जा सकने वाली होती है। प्राप्त भ्रूणों का प्रयोगशाला में सूक्ष्मदर्शी द्वारा गुणवत्ता मूल्यांकन किया जाता है। भ्रूणों को ग्रेडिंग के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है और केवल उच्च गुणवत्ता वाले भ्रूणों को ही स्थानांतरण या क्रायोप्रिजर्वेशन (फ्रीजिंग) के लिए चुना जाता है। चयनित भ्रूणों को उसी प्रजनन अवस्था में आई प्राप्तकर्ता गायों के गर्भाशय में स्थानांतरित किया जाता है। भ्रूण स्थानांतरण तकनीक के अनेक व्यावहारिक और आर्थिक लाभ हैं। इससे उच्च दुग्ध उत्पादन वाली नस्लों का तीव्र प्रसार संभव होता है, झुंड की उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि होती है और पीढ़ी अंतराल (Generation interval) कम होता है। इसके अतिरिक्त, यह तकनीक आनुवंशिक रूप से मूल्यवान, दुर्लभ या संकटग्रस्त नस्लों के संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भ्रूणों के माध्यम से कुछ संक्रामक रोगों के प्रसार को भी नियंत्रित किया जा सकता है।

निष्कर्षतः, गायों में भ्रूण स्थानांतरण प्रौद्योगिकी आधुनिक पशुपालन और डेयरी उद्योग के लिए एक प्रभावशाली साधन है। यह न केवल आनुवंशिक सुधार को गति देती है, बल्कि किसानों की आय बढ़ाने, राष्ट्रीय दुग्ध उत्पादन सुधारने और टिकाऊ पशुपालन को बढ़ावा देने में भी सहायक सिद्ध होती है। भविष्य में उन्नत तकनीकों के साथ इसका और अधिक व्यापक उपयोग पशुधन विकास की दिशा में क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकता है।

ग्राम धमौरा में प्राकृतिक खेती पर एक कृषक जागरूकता एवं उन्मुखीकरण कार्यक्रम आयोजन

छतरपुर। आत्मा परियोजना जिला छतरपुर द्वारा ग्राम धमौरा में प्राकृतिक खेती पर एक महत्वपूर्ण कृषक जागरूकता एवं उन्मुखीकरण कार्यक्रम आयोजित किया गया, जिसमें कुल 65 किसान एवं कृषि सखी उपस्थित रहे।

कार्यक्रम में हेमन्त कुमार सिन्हा (कृषि मौसम वैज्ञानिक) ने प्राकृतिक खेती में गोबर एवं गौमूत्र की महत्ता को विस्तार से समझाया। उन्होंने किसानों को जीवामृत, घनजीवामृत और बीजामृत बनाने की विधि तथा इनके खेतों में उपयोग के वैज्ञानिक लाभों की विस्तृत जानकारी दी। सिन्हा ने बताया कि ये सभी प्राकृतिक घोल न केवल फसलों की गुणवत्ता बढ़ाते हैं, बल्कि मिट्टी के सूक्ष्मजीवों को सक्रिय कर उसकी उर्वरता क्षमता को भी तेज़ी से बढ़ाते हैं।

कार्यक्रम में राजेन्द्र अहिरवार (ब्लॉक तकनीकी प्रबंधक) ने भी उपस्थित किसानों को संबोधित करते हुए कहा कि अंधाधुंध रासायनिक उर्वरकों का उपयोग मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को तेजी से कम कर रहा है। उन्होंने प्राकृतिक खेती को सस्ती, सुरक्षित और पर्यावरण के अनुकूल बताते हुए किसानों से इस पद्धति को अपनाने पर विशेष जोर दिया।अहिरवार ने बताया कि प्राकृतिक खेती से लागत में कमी, मिट्टी का स्वास्थ्य सुधार, फसलों की गुणवत्ता में बढ़ोतरी और दीर्घकालीन उत्पादन क्षमता में वृद्धि जैसे अनेक लाभ किसानों को मिल सकते हैं। कार्यक्रम में उपस्थित किसानों ने प्राकृतिक खेती अपनाने में गहरी रुचि दिखाई और इसे अपने खेतों में लागू करने का संकल्प लिया।

मटका खाद : प्राकृतिक खेती की कुंजी

माजिद खान, अबरार अहमद खान छात्र, बी.एससी. (ऑनर्स) कृषि, SAST&R कृषि संकाय, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, डोंगरिया, बालाघाट (म.प्र.)

डॉ. नीरज नाथ परिहार सहायक प्राध्यापक, SAST&R सरदार पटेल विश्वविद्यालय, डोंगरिया, बालाघाट (म.प्र.)

अवधेश सिंह चौधरी विभागाध्यक्ष, SAST&R सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बालाघाट

परिचय

प्राकृतिक खेती एक ऐसा कृषि पद्धति है जो रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों से दूर रहकर जैविक खाद और पौधों के प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करती है। मटका खाद एक ऐसी खाद है जो प्राकृतिक खेती में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मटका खाद एक प्रकार की जैविक खाद है, जिसे गोबर, खाद्य अपशिष्ट, और अन्य जैविक सामग्री को एकत्रित करके बनाया जाता है। इसे भूमि में मिलाकर या पौधों की जड़ों के पास डालकर उपयोग किया जाता है। यह खाद जमीन की उपजाऊ क्षमता को बढ़ाने के साथ-साथ पौधों को जरूरी पोषक तत्व भी प्रदान करती है आज के समय में जब रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग मिट्टी की उर्वरता को घटा रहा है, तब मटका खाद एक प्राकृतिक और सुरक्षित विकल्प के रूप में उभर कर सामने आई है मटका खाद को किसान घर पर आसानी से तैयार कर सकते हैं और यह पर्यावरण के लिए भी पूर्णतः सुरक्षित है।

मटका खाद बनाने हेतु आवश्यक सामग्री:-

मिट्टी का मटका

* **गाय का गोबर:**- 2 किलोग्राम
* **गाय का मूत्र:**- 1 लीटर

* **गुड़:**- 100 ग्राम * **बेसन:**- 200 ग्राम
* **पानी:**- 3 लीटर

(गाय के गोबर में नमी की मात्रा के आधार पानी का प्रयोग करना चाहिए)

मटका खाद बनाने की विधि

मटके का चुनाव

* सबसे पहले, एक बड़े साइज का मिट्टी का मटके लें और उसके नीचे एक छोटा सा छेद करें। यह छेद हवा के सर्कुलेशन और गैसों को बाहर निकालने के लिए जरूरी है।

मटके में सामग्री भरें

* सबसे पहले, मटके में थोड़ा गोबर डालें। फिर बेसन और दूसरा ऑर्गेनिक कचरा जैसे फल और सब्जियों के छिलके, सूखी पत्तियां और किचन का दूसरा कचरा डालें। इसके ऊपर गाय का मूत्र और गुड़ डालें।

सामग्री मिलाएं

इन सभी को मटके में अच्छी तरह मिला लें। मटके को ऊपर तक न भरें। इसके अंदर थोड़ी जगह खाली रखें, ताकि खाद बनते समय गैस अंदर सर्कुलेट हो सके।

मटके को ढकें

मटके का मुंह कपड़े से ढक दें और उसे छाया वाली जगह पर रखें समय-समय पर मिलाएं। हर 7-10 दिन के अंतराल पर, मटके के अंदर के मिश्रण को लकड़ी की छड़ी की मदद से हल्का सा मिलाएं।

खाद तैयार होने का समय

मटके में खाद को तैयार होने में लगभग 30-40 दिन लगते हैं। जब मटके का मटीरियल मिट्टी जैसा हो जाए और उसका रंग काला हो जाए, तो खाद तैयार है।

मटका खाद का उपयोग

* पेड़-पौधों में हर 15 दिन में पेड़-पौधों की जड़ों में इस खाद का उपयोग करें।
* जब मिट्टी में पर्याप्त नमी हो, तभी इस खाद का उपयोग करें।
* अधिक मात्रा में खाद का उपयोग न करें हमेशा पानी मिलाकर ही खाद को पेड़-पौधे में डालें।

मटका खाद के लाभ

* मटका खाद पोषक तत्वों से भरपूर होती है, जिससे मिट्टी की उर्वरता और बनावट में सुधार होता है।
* मटका खाद के इस्तेमाल से फसल की पैदावार बढ़ती है और पौधों की ग्रोथ बेहतर होती है।
* मटका खाद फायदेमंद माइक्रोऑर्गेनिज्म के लिए एक रहने की जगह देकर मिट्टी की बायोडायवर्सिटी को बढ़ावा देती है।
* मटका खाद में मौजूद ऑर्गेनिक पदार्थ मिट्टी के कटाव को कम करने और मिट्टी की पानी रोकने की क्षमता को बेहतर बनाने में मदद करते हैं।
* मटका खाद सिंथेटिक फर्टिलाइजर का एक कम लागत वाला और पर्यावरण के अनुकूल विकल्प है।

निष्कर्ष

मटका खाद एक ऐसी प्राकृतिक खाद है जो किसान को रासायनिक उर्वरकों से मुक्ति दिला सकती है। यह सस्ती, प्रभावी और पर्यावरण के अनुकूल विधि है। इससे न केवल फसल की गुणवत्ता सुधरती है बल्कि मिट्टी की सेहत भी लंबे समय तक बनी रहती है। इस प्रकार, मटकाखाद को सही मायने में "प्राकृतिक खेती की कुंजी" कहा जा सकता है।

✍ **डॉ सत्यनारायण सोनी** अतिथि शिक्षक, कृषि अर्थशास्त्र विभाग, कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केंद्र, रायगढ़ (छ.ग.)

✍ **डॉ प्रवीण कुमार वर्मा** सहायक प्राध्यापक, कृषि अर्थशास्त्र विभाग, कृषि महाविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

जीएसटी 2.0 कृषि के लिए एक बड़ा वरदान

जीएसटी 2.0 कृषि के लिए एक बड़ा वरदान है, जो ट्रैक्टर, मशीनरी, जैव-कीटनाशकों और कृषि इनपुट पर टैक्स घटाकर 12-18% से 5% कर देता है , जिससे किसानों की लागत कम होती है, टिकाऊ खेती को बढ़ावा मिलता है, खाद्य प्रसंस्करण और डेयरी जैसे क्षेत्रों में ग्रामीण आय बढ़ती है, लॉजिस्टिक्स सुधरते हैं, और भारत की कृषि निर्यात क्षमता बढ़ती है, जिससे खेती मुनाफे का सौदा बनती है और आत्मनिर्भर भारत को मजबूती मिलती है।

कृषि में जीएसटी 2.0 के मुख्य प्रभाव

1.लागत में कमी: ट्रैक्टर, स्पेयर पार्ट्स, जैव-कीटनाशकों (बायो-पेस्टीसाइड्स), और कृषि उपकरणों पर तस्स्ञ की दरें कम होने से खेती की कुल लागत घटती है, जिससे किसानों को सीधे फायदा होता है।

2.टिकाऊ और जैविक खेती को बढ़ावा: बायो-पेस्टीसाइड्स और अन्य जैविक उत्पादों पर कम टैक्स से जैविक खेती को प्रोत्साहन मिलता है, जो पर्यावरण और किसानों के लिए बेहतर है।

3.ग्रामीण आय में वृद्धि: डेयरी उत्पाद, शहद, और खाद्य प्रसंस्करण पर टैक्स में कमी से ग्रामीण आय और प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ती है, जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था मजबूत होती है।

4.फसल की बर्बादी में कमी: कोल्ड स्टोरेज और खाद्य प्रसंस्करण पर कम टैक्स से फसल के बाद होने वाली बर्बादी कम होती है।

5.निर्यात क्षमता में सुधार: बेहतर लॉजिस्टिक्स और कम करों से कृषि उत्पादों के वितरण और निर्यात में सुधार होता है, जिससे भारतीय कृषि वैश्विक बाजार में मजबूत होती है।

6.किसानों की आय में वृद्धि और आत्मनिर्भरता: यह किसानों की आय बढ़ाने और देश को कृषि में आत्मनिर्भर बनाने के संकल्प के अनुरूप है, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में नई जान आती है।

7.उपभोक्ताओं को लाभ: पौष्टिक भोजन और डेयरी उत्पाद उपभोक्ताओं के लिए अधिक किफायती हो जाते हैं, जिससे समग्र स्वास्थ्य को बढ़ावा मिलता है।

8.कृषि उपकरणों पर जीएसटी में कमी: ट्रैक्टर, हार्वेस्टर और ड्रिप सिंचाई प्रणाली जैसे कई कृषि उपकरणों पर जीएसटी को और से घटाकर कर दिया गया है। इससे उपकरणों की खरीद लागत कम हुई है, जिससे छोटे किसानों के लिए मशीनीकरण अधिक किफायती हो गया है।

9.जैविक उत्पादों को बढ़ावा: जैव-कीटनाशकों और सूक्ष्म पोषक तत्वों पर जीएसटी कम की गई है, जिससे किसानों को लाभ होगा और रासायनिक उर्वरकों से जैव-उर्वरकों की ओर बदलाव को बढ़ावा मिलेगा।

10.डेयरी और संबद्ध गतिविधियों में सुधार: दूध और पनीर पर जीएसटी को हटा दिया गया है, जिससे उपभोक्ताओं के साथ-साथ किसानों और दुग्ध उत्पादकों को भी फायदा होगा। मधुमक्खी पालन, मुर्गी पालन और मछली पालन जैसी अन्य संबद्ध गतिविधियों को भी जीएसटी छूट का लाभ मिलेगा।

11.कृषि वस्तुओं की ढुलाई सस्ती: वाणिज्यिक माल वाहन पर जीएसटी घटने से कृषि वस्तुओं की ढुलाई सस्ती हुई है, जिससे लॉजिस्टिक लागत में कमी आई है और किसानों के लिए बाजार तक पहुंच आसान हुई है।

12.ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती: ये सुधार ग्रामीण महिलाओं द्वारा स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से चलाए जा रहे डेयरी और हस्तशिल्प जैसे क्षेत्रों को भी सशक्त बनाएंगे। इससे मांग बढ़ेगी और ग्रामीण अर्थव्यवस्था मजबूत होगी।

13.अन्य लाभ: केंदू के पत्तों पर जीएसटी कम होने से आदिवासी समुदायों की आजीविका को मजबूती मिलेगी।

14.जीएसटी सुधारों का कृषि क्षेत्र पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है, जिसमें कृषि उपकरणों, जैव-उत्पादों और अन्य संबंधित वस्तुओं पर करों में कमी शामिल है, जिससे किसानों की लागत कम हुई है और उनकी आय में वृद्धि की उम्मीद है। इन सुधारों का उद्देश्य मशीनीकरण को बढ़ावा देना, बर्बादी को कम करना और एकीकृत खेती को प्रोत्साहित करना है।

संक्षेप में, जीएसटी सुधारों ने कृषि लागत को कम करके, मशीनीकरण को बढ़ावा देकर और विभिन्न क्षेत्रों को छूट प्रदान करके किसानों के लिए एक अधिक अनुकूल और समृद्ध वातावरण बनाने का प्रयास किया है। उर्वरकों और जैव कीटनाशकों पर जीएसटी में कमी से किसानों को ऐसे समय में "बड़ी राहत" मिलेगी, जब कृषि फसलों पर अनियमित मौसम के कारण प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। औसत इनपुट लागत कुल खेती खर्च का लगभग 30-40 प्रतिशत है, इन लागतों को कम करने से गुणवत्तापूर्ण फसल सुरक्षा समाधानों की पहुंच बढ़ेगी, जिससे किसानों को उपज बढ़ाने और आय बढ़ाने में मदद मिलेगी।" डेयरी उत्पादों पर जीएसटी घटाकर 5% करने से किसानों के सामर्थ्य बढ़ेगा । डेयरी उत्पादों पर जीएसटी को घटाकर 5 प्रतिशत करने के निर्णय से किसानों के सामर्थ्य और खपत में सुधार होगा। इससे देश में प्रोटीन की कमी दूर होगी और साथ ही डेयरी किसान परिवारों को सहायता मिलेगी। डेयरी उत्पादों पर जीएसटी में कटौती एक 'प्रगतिशील कदम' हैं । इससे भारत के आठ करोड़ डेयरी किसानों को लाभ होगा। यूएचटी दूध को कर-मुक्त कर दिए जाने और कंडेंस्ड दूध, मक्खन, घी, पनीर और चीज जैसे उत्पादों पर कर 12 प्रतिशत से घटाकर 5 प्रतिशत कर दिए जाने से, इन सुधारों से ग्रामीण आय में वृद्धि होने और चारा और पशु देखभाल में अधिक निवेश को प्रोत्साहन मिलने की उम्मीद है। कृषि उपकरणों, कलपुर्जों और टायरों पर जीएसटी घटाकर 5 प्रतिशत करने की सराहना करते हुए कहा कि इससे ट्रैक्टर, हार्वेस्टर और अन्य उपकरण अधिक किफायती होंगे।ये सुधार उद्योग जगत को श्रम की कमी को दूर करने, किसानों की उत्पादकता बढ़ाने और टिकाऊ प्रथाओं को बढ़ावा देने के लिए सशक्त बनाएंगे।÷ उन्होंने कहा कि यह कदम आगे स्थानीयकरण और नवाचार के लिए सही वातावरण प्रदान करता है। उन्होंने कहा कि यह सुधार विशेष रूप से कटाई के मौसम से पहले समय पर किया गया है। कम लागत से अधिक किसान गठरी बनाने जैसे समाधान अपना सकेंगे। इससे फसल अवशेषों को जलाने में कमी आएगी।

01/2025-26

बन्दरों का आतंक: कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर बढ़ता संकट

✍ **डॉ. अविनाश कुमार गौतम** (सहायक प्राध्यापक) कृषि अभियांत्रिकी, कृषि महाविद्यालय, गरियाबंद, इंदिरा गाँधी कृषि वि.वि. (छ.ग.)

✍ **लेखराम वर्मा** (सहायक प्राध्यापक) कृषि प्रसार, कृषि महाविद्यालय, गरियाबंद, इंदिरा गाँधी कृषि वि.वि. छ.ग.

✍ **मोनिका गौतम** पूर्व वरिष्ठ अनुसंधान फेलो, जवाहरलाल नेहरु कृषि वि.वि. जबलपुर, म.प्र.।

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में बन्दरों का उपेद्रव एक गम्भीर एवं बहुआयामी समस्या के रूप में उभर रहा है। यह संकट अब केवल मानव-वनजीव संघर्ष तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि कृषि उत्पादन, किसानों की आय, पोषण सुरक्षा और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रहा है। फल, सब्जी और अनाज फसलों को होने वाले भारी नुकसान के कारण किसानों की आजाविका पर गहरा आघात पड़ा है, जिससे कई क्षेत्रों में फसल विविधीकरण घटा है और खेती की स्थिरता कमजोर हुई है। भारत में प्रमुख बन्दर प्रजातियों में रीसस मकाक (Macaca mulatta), बोनेट मकाक (Macaca radiata) असमीय मकाक (Macaca assamensis) हनुमान लंगूर (Semnopithecus entellus) तथा शेरपूँछ मकाक (Macaca silenus) शामिल हैं। पर्यावरण मंत्रालय (2023) तथा वनजीव संस्थानों के अनुसार, पिछले एक दशक में बन्दरों की जनसख्या में लगभग 28-35% की वृद्धि दर्ज की गई है, जिस के परिणाम स्वरूप देश के 60% से अधिक जिलों में फसल क्षति की घटनाएँ सामने आ रही हैं।

कृषि पर प्रभाव

राष्ट्रीय संस्थानों (WII, IARI) के अनुमानों के अनुसार बन्दरों से होने वाली औसत फसल क्षति सब्जियों में 25-35%, फलों में 30-40%, अनाज में 10-20% तथा अन्य फसलों में 5-12% तक पाई गई है। इसे देशभर में कृषि क्षेत्र को प्रतिवर्ष लगभग रु. 2,200-2,500 करोड़ की प्रत्यक्ष आर्थिक हानि होती है। वास्तविक नुकसान इससे अधिक है, क्योंकि इसमें अतिरिक्त श्रम, निगरानी, पुनबुवाई तथा बाड़बंदी जैसी अप्रत्यक्ष लागतें शामिल नहीं हैं।

छत्तीसगढ़ का परिप्रेक्ष्य

छत्तीसगढ़ में बन्दर उपेद्रव ग्रामीण कृषि अर्थव्यवस्था के लिए एक गंभीर चुनौती बन चुका है। विशेषतः रायगढ़, सरगुजा, कोरिया, जशपुर, विलासपुर और कबीरदाम जिलों में फसलों को व्यापक नुकसान हो रहा है। राज्य के 2023-24 के आँकड़ों के अनुसार लगभग 17-18% कृषि क्षेत्र नियमित रूप से बन्दर क्षति से प्रभावित है। फलों में 32-40%, सब्जियों में 22-30%, मक्का में 15-25% तथा धान में 10-18% तक नुकसान दर्ज किया गया है। इससे राज्य को प्रतिवर्ष लगभग रु. 135-160 करोड़ की प्रत्यक्ष आर्थिक हानि होती है।

किसानों की आय और पोषण पर असर

लगातार फसल क्षति के कारण किसान पारंपरिक फल-सब्जी उत्पादन छोड़कर केवल धान जैसी कम जोखिम वाली फसलों पर निर्भर हो रहे हैं। इससे प्रति किसान औसत रु. 30,000-40,000 वार्षिक आय.हानि आँकी गई है। छोटे किसानों के लिए यह नुकसान रु. 45,000-60,000 तक पहुँच जाता है। इस का सीधा प्रभाव ग्रामीण पोषण सुरक्षा पर पड़ा है। बैंगन, टमाटर, मिच्ची, लौकी, भिण्डी जैसी पोषक सब्जियों तथा आम, अमरूद, पपीता जैसा फलों की उपलब्धता घटने से ग्रामीण परिवारों के आहार में विविधता कम हुई है।

बन्दर जनसख्या वृद्धि के कारण

वनों में प्राकृतिक भोजन की कमी, जलस्रोतों का सीकुड़ना, मानव बस्तियों का विस्तार, मन्दिरों तथा बाजारों में खाद्य उपलब्धता और कचहरा प्रबंधन की कमजोरी ने बन्दरों को मानव बस्तियों की ओर आकर्षित किया है।

समाधान और प्रबंधन रणनीतियां

वैज्ञानिक अध्ययनों से स्पष्ट है कि पूर्ण उन्मूलन न तो व्यवहारिक है और न ही पारिस्थितिक रूप से उचित। इसलिए सह-अस्तित्व आधारित नियंत्रण उपाय आवश्यक हैं। सौलर फेन्सिंग, मजबूत तार-बाड़,ए सामूहिक निगरानी दल तथा ध्वनि-प्रकाश आधारित निर्धाक 40-70% तक फसल हानि कम कर सकते हैं।

निष्कर्ष

ग्रामीण भारत में बन्दरों का बढ़ता उपेद्रव केवल मानव-वनजीव संघर्ष नहीं, बल्कि कृषि विविधता, किसान आय, पोषण सुरक्षा और ग्रामीण स्थिरता से जुड़ी एक व्यापक समस्या है। इसका समाधान वैज्ञानिक तकनीक, सामूहिक सहभागिता और नीति-स्तरीय हस्तक्षेप के समन्वय से ही सम्भव है।

प्रो. बालिक दास राय
बन्टी राय
98276-11495
88715-18885

अमित राय
मै. माँ उर्वरक केन्द्र
रसायनिक एवं जैविक खाद बीज एवं दवाई के विक्रेता

पताः भितरवार रोड, डबरा (म.प्र.)
03/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

शिवानी क्षीर सागर (अतिथि शिक्षक)
महंत बिसाहूदास उद्यानिकी महाविद्यालय एवं अनुसंधान केंद्र, गौरेला–पेण्ड्रा–मरवाही (छ.ग.)

सुमन पाण्डेय (पी.एच.डी. स्कॉलर)
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

छत्तीसगढ़ में पुष्प उद्योग की स्थिति एवं विकास

छत्तीसगढ़ में पुष्प उद्योग का विकास राज्य की प्राकृतिक परिस्थितियों के अनुकूल होने के कारण संभव हो पाया है। यहाँ की जलवायु उष्णकटिबंधीय है, जहाँ पर्याप्त वर्षा, धूप और उपजाऊ मिट्टी उपलब्ध है। ये सभी कारक फूलों की खेती के लिए अनुकूल माने जाते हैं। राज्य के मैदानी, पठारी एवं आदिवासी क्षेत्रों में अलग-अलग प्रकार के फूलों की खेती की जा सकती है, जिससे क्षेत्रीय स्तर पर विविधता देखने को मिलती है। वर्तमान समय में छत्तीसगढ़ के रायपुर, दुर्ग, बिलासपुर, राजनांदगांव, जांजगीर-चांपा, सरगुजा एवं जशपुर जैसे जिलों में पुष्प खेती अधिक प्रचलित हो रही है। यहाँ मुख्य रूप से गेंदा, गुलाब, रजनीगंधा, गुलदाउदी, ग्लेडियोलस तथा चमेली की खेती की जाती है। गेंदा फूल का उत्पादन सबसे अधिक होता है, क्योंकि इसकी खेती सरल है, लागत कम है और इसकी मांग धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक आयोजनों में पूरे वर्ष बनी रहती है। आर्थिक दृष्टि से पुष्प उद्योग किसानों के लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध हो रहा है। फूल अल्प अवधि में तैयार हो जाते हैं और इन्हें शीघ्र बाजार में बेचा जा सकता है। परंपरागत फसलों की तुलना में फूलों की खेती से प्रति इकाई क्षेत्र अधिक आय प्राप्त होती है। इसी कारण अनेक किसान धान जैसी परंपरागत फसलों के साथ-साथ फूलों की खेती को भी अपना रहे हैं, जिससे उनकी आय में स्थिरता और वृद्धि दोनों संभव हो रही हैं।

पुष्प उद्योग का सामाजिक प्रभाव भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। फूलों की खेती, माला निर्माण, ग्रेडिंग, पैकिंग एवं विपणन जैसे कार्यों में ग्रामीण महिलाओं को रोजगार के अवसर प्राप्त हो रहे हैं। स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाएँ सामूहिक रूप से फूलों की खेती कर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन रही हैं। इससे न केवल परिवार की आय बढ़ी है, बल्कि महिलाओं का सामाजिक सम्मान और निर्णय.निर्माण में भागीदारी भी बढ़ी है। राज्य सरकार एवं केंद्र सरकार द्वारा पुष्प उद्योग को बढ़ावा देने हेतु विभिन्न योजनाएँ संचालित की जा रही हैं। राष्ट्रीय बागवानी मिशन, एकीकृत बागवानी विकास मिशन तथा राज्य उद्यानिकी विभाग के माध्यम से किसानों को उन्नत रोपण सामग्रीए तकनीकी प्रशिक्षण, सिंचाई सुविधाएँ एवं अनुदान उपलब्ध कराया जा रहा है। कृषि विज्ञान केंद्र एवं कृषि विश्वविद्यालय किसानों को आधुनिक तकनीकों, रोग-कीट प्रबंधन और बाजार उन्मुख उत्पादन के बारे में मार्गदर्शन प्रदान कर रहे हैं। हालाँकि, छत्तीसगढ़ में पुष्प उद्योग के विकास में कुछ चुनौतियाँ भी हैं। संगठित बाजार व्यवस्था का अभाव, कोल्ड स्टोरेज एवं परिवहन सुविधाओं की कमी, मूल्य में उतार-चढ़ाव तथा किसानों में तकनीकी जानकारी की कमी प्रमुख समस्याएँ हैं। इन चुनौतियों के कारण कई बार किसानों को उनके उत्पाद का उचित मूल्य नहीं मिल पाता। भविष्य की दृष्टि से यदि संरक्षित खेती, पॉलीहाउस, उन्नत किस्मों, मूल्य संवर्धन तथा निर्यात उन्मुख उत्पादन पर ध्यान दिया जाए, तो छत्तीसगढ़ में पुष्प उद्योग तीव्र गति से विकसित हो सकता है। इससे न केवल किसानों की आय बढ़ेगी, बल्कि राज्य की कृषि आधारित अर्थव्यवस्था को भी मजबूती मिलेगी।

इस प्रकार, छत्तीसगढ़ में पुष्प उद्योग वर्तमान में विकासशील अवस्था में होते हुए भी उज्ज्वल भविष्य की संभावनाएँ रखता है। उचित नीतियों, तकनीकी सहयोग और प्रभावी विपणन व्यवस्था के माध्यम से यह उद्योग किसानों के लिए एक सशक्त और स्थायी आजीविका का साधन बन सकता है।

वर्तमान स्थिति

वर्तमान समय में छत्तीसगढ़ में पुष्प उद्योग तेजी से उभरता हुआ कृषि क्षेत्र है, हालांकि यह अभी पूर्ण रूप से विकसित अवस्था में नहीं पहुँचा है। राज्य के अनेक जिलों-जैसे रायपुर, दुर्ग, बिलासपुर, राजनांदगांव, जांजगीर-चांपा, सरगुजा एवं जशपुर में किसान फूलों की खेती को परंपरागत फसलों के पूरक रूप में अपना रहे हैं। इन क्षेत्रों में फूलों की खेती मुख्यतः खुले खेतों में की जाती है, जबकि संरक्षित खेती (यपॉलीहाउस/शेडनेट) अभी सीमित स्तर पर ही प्रचलित है।

छत्तीसगढ़ में उगा, जाने वाले प्रमुख फूलों में गेंदा, गुलाब, रजनीगंधा, गुलदाउदी, ग्लेडियोलस एवं चमेली शामिल हैं। इनमें गेंदा सबसे अधिक लोकप्रिय और व्यापक रूप से उगाया जाने वाला फूल है। इसका मुख्य कारण इसकी कम लागत, कम अवधि में तैयार होने की क्षमता तथा वर्ष भर इसकी स्थायी मांग है। गेंदा फूल का उपयोग पूजा-पाठ, धार्मिक आयोजनों, सामाजिक समारोहों, माला निर्माण एवं सजावट में बड़े पैमाने पर किया जाता है, जिससे किसानों को नियमित बाजार उपलब्ध होता है।

गुलाब एवं ग्लेडियोलस जैसे फूल अपेक्षाकृत उच्च मूल्य वाले हैं और इनका उपयोग कट फ्लावर के रूप में किया जाता है। शहरी क्षेत्रों में बढ़ती सजावटी मांग तथा होटल, मैरिज गार्डन एवं कार्यक्रम आयोजनों के कारण इन फूलों की खपत में निरंतर वृद्धि हो रही है। वहीं रजनीगंधा और चमेली जैसे सुगंधित फूल स्थानीय बाजारों में लोकप्रिय हैं और इनके माध्यम से छोटे किसानों को अच्छी आय प्राप्त हो रही है।

वर्तमान स्थिति में पुष्प उद्योग का स्वरूप अभी मुख्यतः स्थानीय एवं क्षेत्रीय बाजारों पर आधारित है। अधिकांश किसान अपने उत्पाद को निकटवर्ती मंडियों,

हाट-बाजारों, मंदिरों एवं शहरी फूल बाजारों में बेचते हैं। संगठित विपणन, कोल्ड चेन एवं निर्यात सुविधाओं की सीमित उपलब्धता के कारण बड़े स्तर पर व्यवसायिक विस्तार अभी संभव नहीं हो पाया है। फिर भी, किसानों की बढ़ती रुचि, सरकारी योजनाओं का समर्थन और बाजार में फूलों की बढ़ती मांग के कारण छत्तीसगढ़ में पुष्प उद्योग की वर्तमान स्थिति को विकासशील और संभावनाओं से भरपूर कहा जा सकता है। उचित तकनीकी मार्गदर्शन, बेहतर विपणन व्यवस्था और संरक्षित खेती को बढ़ावा देकर आने वाले समय में इस क्षेत्र का और अधिक विस्तार संभव है।

जलवायु एवं प्राकृतिक अनुकूलता

छत्तीसगढ़ की भौगोलिक एवं जलवायु परिस्थितियाँ पुष्प उत्पादन के लिए अत्यंत अनुकूल मानी जाती हैं। राज्य की उष्णकटिबंधीय जलवायु, पर्याप्त धूप, 1200-1400 मिमी औसत वर्षा तथा उपजाऊ दोमट और लेटराइट मिट्टी फूलों की खेती के लिए उपयुक्त वातावरण प्रदान करती है। यहाँ की जलवायु में मौसमी विविधता पाई जाती है, जिससे विभिन्न मौसमों में अलग-अलग प्रकार के फूलों का उत्पादन संभव हो पाता है। राज्य के मैदानी क्षेत्रों में गेंदा एवं गुलाब, पठारी क्षेत्रों में ग्लेडियोलस एवं गुलदाउदी तथा आदिवासी क्षेत्रों में स्थानीय सजावटी एवं सुगंधित फूलों की खेती की अच्छी संभावनाएँ हैं। यही कारण है कि कम निवेश और सीमित संसाधनों के बावजूद किसान फूलों की खेती से संतोषजनक लाभ प्राप्त कर पा रहे हैं।

आर्थिक महत्व

पुष्प उद्योग आर्थिक दृष्टि से किसानों के लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध हो रहा है। फूलों की फसल अल्प अवधि में तैयार हो जाती है, जिससे कम समय में नकद आय प्राप्त होती है। परंपरागत फसलों जैसे धान की तुलना में फूलों की खेती से प्रति हेक्टेयर अधिक लाभ संभव ळें फूलों की निरंतर मांगकृधार्मिक कार्यों, सामाजिक आयोजनों, विवाह, सजावट एवं शहरी उपभोगकृके कारण बाजार में इनके लिए स्थायी अवसर उपलब्ध रहते हैं। कई किसान अब धान के साथ-साथ या उसके स्थान पर फूलों की खेती अपनाकर अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ कर रहे हैं। इस प्रकार पुष्प उद्योग राज्य में आय विविधीकरण (Income Diversification) का एक प्रभावी साधन बन रहा है।

रोजगार एवं सामाजिक प्रभाव

पुष्प उद्योग ने छत्तीसगढ़ के ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर सृजित किए हैं। फूलों की खेती से लेकर उनकी कटाई, ग्रेडिंग, माला निर्माण, पैकेजिंग एवं विपणन तक अनेक श्रमप्रधान गतिविधियाँ जुड़ी हुई हैं। इन गतिविधियों में ग्रामीण महिलाएँ एवं युवा बड़ी संख्या में संलग्न हो रहे हैं। स्वयं सहायता समूहों तथा गौठान योजनाओं के माध्यम से महिलाओं ने सामूहिक रूप से फूलों की खेती को आजीविका का साधन बनाया है। इससे उनकी आर्थिक आत्मनिर्भरता बढ़ी है तथा सामाजिक स्तर पर उनका आत्मविश्वास और सम्मान भी सुदृढ़ हुआ है। परिणामस्वरूप पुष्प उद्योग सामाजिक सशक्तिकरण का भी एक महत्वपूर्ण माध्यम बन रहा है।

सरकारी प्रयास एवं संस्थागत सहयोग

छत्तीसगढ़ में पुष्प उद्योग के विकास हेतु राज्य एवं केंद्र सरकार द्वारा विभिन्न योजनाएँ संचालित की जा रही हैं। राष्ट्रीय बागवानी मिशन तथा एकीकृत बागवानी विकास मिशन के अंतर्गत किसानों को उन्नत रोपण सामग्री, सिंचाई सुविधाए ड्रिप एवं स्प्रिंकलर प्रणाली तथा वित्तीय अनुदान प्रदान किया जा रहा है।राज्य उद्यानिकी विभाग, कृषि विज्ञान केंद्र एवं कृषि विश्वविद्यालय किसानों को प्रशिक्षण, प्रदर्शन एवं तकनीकी परामर्श उपलब्ध करा रहे हैं। इन संस्थानों के सहयोग से किसान नवीन तकनीकों, रोग-कीट प्रबंधन तथा बाजार उन्मुख उत्पादन के प्रति जागरूक हो रहे हैं, जिससे पुष्प उद्योग को संस्थागत समर्थन प्राप्त हो रहा है।

विपणन एवं चुनौतियाँ

यद्यपि पुष्प उद्योग में व्यापक संभावनाएँ हैं, फिर भी विपणन व्यवस्था इसकी प्रमुख चुनौती बनी हुई है। अधिकांश किसान स्थानीय हाट-बाजारों एवं नजदीकी मंडियों पर निर्भर हैं, जहाँ मूल्य निर्धारण अनिश्चित रहता है। कोल्ड स्टोरेज, भंडारण एवं परिवहन सुविधाओं की कमी के कारण फूलों की गुणवत्ता प्रभावित होती है, जिससे किसानों को उचित मूल्य नहीं मिल पाता। इसके अतिरिक्त तकनीकी ज्ञान की कमी उन्नत किस्मों की अनुपलब्धता तथा बाजार जानकारी का अभाव भी इस उद्योग के विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं।

विकास की संभावनाएँ

यदि संरक्षित खेती, पॉलीहाउस, शेडनेट, उन्नत किस्मों के उपयोग तथा मूल्य संवर्धन पर विशेष ध्यान दिया जाए, तो छत्तीसगढ़ में पुष्प उद्योग तीव्र गति से विकसित हो सकता है। कट फ्लावर उत्पादन, फ्लावर प्रोसेसिंग एवं निर्यात उन्मुख खेती से किसानों की आय में उल्लेखनीय वृद्धि संभव है। संगठित विपणन, सहकारी समितियाँ एवं निजी क्षेत्र की भागीदारी से पुष्प उद्योग को व्यावसायिक स्वरूप प्रदान किया जा सकता है, जिससे राज्य की कृषि अर्थव्यवस्था को नई मजबूती मिलेगी।

निष्कर्ष

इस प्रकार छत्तीसगढ़ में पुष्प उद्योग वर्तमान में प्रारंभिक अवस्था में होते हुए भी विकास की अपार संभावनाएँ रखता है। अनुकूल जलवायु, बढ़ती बाजार मांग, सरकारी सहयोग एवं किसानों की रुचि इस क्षेत्र को भविष्य में एक सशक्त कृषि उद्यम बना सकती है। उचित नीति निर्माण, तकनीकी सहायता एवं प्रभावी विपणन व्यवस्था के माध्यम से पुष्प उद्योग न केवल किसानों की आय बढ़ा सकता है, बल्कि ग्रामीण रोजगार एवं राज्य के समग्र विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

पशु चिकित्सा में नियमित रूप से किए जाने वाले प्रयोगशाला परीक्षण

डॉ. जागृति कृषान, डॉ. रजनी फ्लोरा कुजूर, डॉ. आशुतोष तिवारी
डॉ. प्रीति सिंह, डॉ. भुवनेश्वर पाल सिंह कंवर
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय अंजोरा दुर्ग, दाऊ श्री वासुदेव चंद्राकर कामधेनू विश्वविद्यालय दुर्ग (छ.ग.)

पशुपालकों को अपने पशुओं को स्वस्थ रखने एवं बिमारीयों की जानकारी हेतु बुनियादी चिकित्सीय जानकारी प्रयोगशाला परीक्षण से प्राप्त कर सकते है। पालतू पशुओं का वजन जांचने, उनकी आंखो को देखने, उसके कानो की जांच एवं मुह व दांतो की जांच करने की गतिविधियों पर नजर रखने के अलावा, कुछ अन्य परीक्षण भी किए जाते है। पशु चिकित्सक हृदय, फेफड़े और पाचन तंत्र की आवाजों को सुनने के लिए स्टेथोस्कोप का उपयोग करता है, जिससे वह आंतरिक अंगो में कोई समस्या हैं या नहीं उसका पता लगाते है। साथ ही वह बाह्य परीक्षण में श्लेष्मा झिल्ली के रंग आधार पर रक्त अल्पता, एनीमिया एवं पीलीया जैसी बीमारीयों का भी परीक्षण करते है। पशु चिकित्सक के द्वारा शरीर का तापमान लेने हेतु थर्मामीटर का उपयोग किया जाता है, जिससे वह शरीर के तापमान में कमी या वृद्धि का पता लगाते है। जिससे पशुओं को समय पर चिकित्सा प्राप्त हो सके।

प्रयोगशाला में होने वाले प्रमुख परीक्षण

1.पूर्ण रक्त गणना-

* **लाल रक्त कोशिकाएं:** रक्त में लाल रक्त कणिकाओं की संख्याए, हीमोग्लोबिन की मात्रा, इ.एस.आर एवं पीसीवी का विश्लेषण किया जाता है।

* **श्वेत रक्त कोशिकाएं:** ये संक्रमण और प्रतिरक्षा प्रणाली को दर्शाती हैं।

* **प्लेटलेटस:** रक्त में थक्का जमने की क्षमता का पता चलता हैं, जो चोटो के लिए महत्वपूर्ण है।

पूर्ण रक्त गणना का समान्य मान

पशु	लाल रक्त कोशिकाएं (मिलयन/माइकोलीटर)	भवेत रक्त कोशिकाए (हजार/माइकोलीटर)	प्लेटलेटस (लाख/माइकोलीटर)	पीसीवी (प्रतिशत)	इ.एस.आर. (मिमि/घंटा)	हिमोग्लोबिन (ग्रा./डेसीलीटर)
भवान	5.5-8.5	5-14	4.5+/-1.5	37-55	5-25	12-18
बकरा	8-18	4-13		22-38	0-1	8-12
गौवंशी	5.0-10	4-12		24-46	1-2	8-15
घोड़ा	7-11	5.6-12.1	3.0+/-1.5	34-45	15-38/20min	11.5-16
भेड़	9-15	4-12	4.5+/-1.5	27-45	0-1	9-15
सूकर	5-8	11-22	4.5+/-1.5	32-50	1-14	10-16
बिल्ली	5.0- 10	5.5-19.5	2.0-3.0	24-45	1-23	10-15
पक्षी	2.5-4.5	4-7	.25-.40	30-35	1-3	11-13

2.बायोकैमिस्ट्री परीक्षण- यह परीक्षण रक्त मे उपस्थित प्लाज्मा एवं सीरम के नमूने से किया जाता है। प्लाज्मा एवं सीरम का एकत्रित रक्त के नमूने से किया जाता है।

एल्ब्यूमिन- यह यकृत के कार्य का संकेत देता है।

सोडियम एवं पोटेशियम- गुर्दे, शरीर की पानी की मात्रा या अन्य समस्याओ का पता लगाने मे मदद करता है।

एमाइलेज- अग्नाशय में सूजन का संकेत देता हैं।

बिलीरूबिन-यह यकृत में बीमारी का संकेत देता है।

क्रिएटीनीन- यह गुर्दे में बीमारी का संकेत देता है।

ग्लूकोज- रक्त में ग्लूकोज की मात्रा पता करता है।

प्लाज्मा एवं सीरम गणना का समान्य मान

पशु	एल्ब्यूमिन (ग्राम/डेसी लीटर)	सोडियम (मिलीमोल लीटर)	पोटेशियम (मिलीमोल/लीटर)	ग्लूकोज (मिलीग्रा./डेसीलीटर)	बिलीरूबिन (मिलीग्रा./डेसीलीटर)	क्रिएटीनीन (मिलीग्रा./डेसीलीटर)
भवान	2.5-3.6	145-153	4.2-5.6	77-120	.1-.3	.5-1.4
बकरा	2.7-3.9	136-154	4-6	50-75	0-.1	.4-1.8
गौवं ी	2.7-4.3	136-144	4-5.3	37-71	.1-.3	.7-1.1
घोड़ा	2.7-4.2	136-142	2.4-5.2	76-127	.5-2.1	1-1.9
भेड़	2.4-3.9	136-154	4-6	50-80	.1-.4	1.2-1.9
सूकर	1.9-3.3	139-152	4.9-7.1	65-95	.1-.2	1-2.7
बिल्ली	2.3-3.4	151-158	4-5.3	58-120	.1-.2	.7-1.8

रक्त परीक्षण के नमूने- रक्त परीक्षण के नमूने पशुओं में अलग अलग स्थान से लिया जाता है।

पशु	**रक्त परीक्षण के नमूने का स्थान**
श्वान, बिल्ली	सिफैलिक एवं सिफेनस शिरा
गौवंशी, बकरा, घोड़ा, भेड़	जुगलर शिरा एवं कान शिरा
सूकर	अग्र वेनाकेवा एवं कान शिरा
पक्षी	पंख शिरा एवं हृदय

3.मल के नमूने की जांच: मल के नमूने का सूक्ष्मदर्शी से परीक्षण कर जांच किया जाता है। मल परीक्षण से पाचन तंत्र में पाये जाने वाले परजीवियों जैसे- फिताकृमि, अंकुश कृमि, गोलकृमि के अंडो की उपस्थित का पता लगाने में किया जाता है। आंतरिक परजीवियों का पता चलने से सही समय पर उचित चिकित्सा प्राप्त होती है, जिससे पशुओं को हृष्ट-पुष्ट एवं स्वस्थ रखा जा सके।

4.मूत्र के नमूने की जांच: मूत्र के नमूनों का विश्लेषण विभिन्न प्रकार के रोगों का पता लगाने में किया जाता है। नमूने का विश्लेषण संग्रह के तुरंत बाद किया जाना चाहिए या संग्रह के बाद ठंडा वातावरण में रख कर प्रयोगशाला तक ले जाना चाहिए। कमरे के तापमान या उससे अधिक तापमान पर छोड़ा गया मूत्र खराब हो जाता है तथा परीक्षण के परिणाम सटीक नहीं आता।

समान्य मूत्र का रंग पीला होता है, और यह पारदर्शी या साफ होता है। किसी बीमारी या संक्रमण की उपस्थित से रंग या स्पष्टता बदल जाती है। अधिकांश पशुओं के मूत्र में अमोनिया की हल्की गंध होती है। मूत्र मार्ग में जीवाणु का संक्रमण होने पर अमोनिया की गंध अधिक आती है। मूत्र के रसायनिक विश्लेषण में उसका विशिष्ट घनत्व, पी.एच. से अम्लता या क्षारीयता की मात्रा, प्रोटीन, ग्लूकोज, खंडित रक्त कोशिकाओ की मात्रा, आदि का निर्धारण शामिल हैं। इसमें से किसी में भी परिवर्तन रोग, चोट या दोष का संकेत हो सकता है। मूत्र मे लाल रक्त कोशिकाओं का अधिक होना मूत्र मार्ग से रक्त स्त्राव का संकेत देती है। मूत्र मे श्वेत रक्त कोशिकाओं का अधिक होना मूत्र मार्ग से संक्रमण का संकेत देती है। मूत्र मे अन्य ठोस घटक जैसे कास्ट कोशिका का अधिक होना गुर्दे की बीमारी का संकेत देती है।

लौकी की वैज्ञानिक एवं उन्नत खेती

राहुल यादव, शशि शेखर मिश्रा (शोध छात्र)
सब्ज़ी विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

आस्तिक झा सहायक प्राध्यापक, सब्ज़ी विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या

लौकी एक अत्यन्त ही प्रचलित सब्जी है। उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में इसकी खेती जायद एवं खरीफ दोनों ही ऋतुओं में की जाती है। इसकी उपलब्धता लगभग पूरे वर्ष रहती है। सब्जियों के अलावा इसके कच्चे फलों से रायता, कोफ्ता, अचार, हलवा एवं खीर इत्यादि बनाये जाते हैं। यह कब्ज को दूर करने में अत्यन्त ही लाभकारी है। बीज से प्राप्त तेल सरदर्द में राहत दिलाता है। इसका गूदा दवाओं के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसमें विटामिन के साथ-साथ कैल्सियम प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

जलवायु-लौकी की खेती के लिये गर्म एवं आर्द्र जलवायु की आवश्यकता होती है। अतः इसकी फसल जायद तथा खरीफ दोनों ऋतुओं में उगाई जाती है। पाले के प्रति लौकी की फसल अत्यन्त सुग्राही है फिर भी जाड़े को सहन कर लेने वाली प्रजातियाँ उपलब्ध हैं। अधिक वर्षा एवं बादल वाले मौसम में बीमारी एवं कीड़ों का प्रकोप अधिक होता है। बीज फसल उगाने के लिये वर्षा का मौसम अधिक उपयुक्त रहता है। इस मौसम में फल अधिक लगते हैं और फलों में बीज का विकास अच्छा होता है। शुष्क मौसम, प्रकाश की अधिकता एवं उच्च तापक्रम पौधों में नर फूलों को बढ़ावा देते हैं। निम्न तापक्रम पर फलों का विकास प्रभावित होने से बीज के परिपक्व होने में भी अधिक समय लगता है। बीज अंकुरण के लिये 30-35 डिग्री सेंटीग्रेड और पौधों की बढ़वार के लिये 32-38 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान सर्वोत्तम रहता है। मध्यम जलवायु वाले क्षेत्रों में इसकी खेती पूरे वर्ष की जा सकती है।

भूमि का चुनाव एवं तैयारी-सामान्यतः लौकी की खेती सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है, परन्तु 6.0-7.0 पी0एच0 मान वाली मृदा काफी उपयुक्त मानी जाती है। मिट्टी का पी0एच0 मान 7.5 से अधिक होने पर गर्मी के मौसम में पौधों की बढ़वार पर लवणता का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जीवांशयुक्त दोमट एवं मटियार दोमट भूमि से जिसमें जल धारण क्षमता अधिक हो उत्तम होती है। उसके अलावा जल निकास का अच्छा प्रबंध होने पर इसकी अधिकतम उपज प्राप्त की जा सकती है। पथरीली व ऐसी भूमि जहाँ पानी का ठहराव हो इसकी खेती के लिये अच्छी नहीं मानी जाती है। अच्छी प्रकार खेत तैयार करने के लिये पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा 2-3 जुताइयाँ देशी हल या कल्टीवेटर से करना चाहिये। प्रत्येक जुताई के साथ पाटा अवश्य लगाना चाहिये ताकि ढेले इत्यादि टूट जायें और भूमि पूर्णतया समतल एवं भुरभुरी हो जाये। बुवाई से पहले खेत से घास-फूस एवं खरपतवार निकालकर जला देना चाहिये।

प्रजातियाँ / संकर किस्में

सी ओ -1-यह किस्म तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयम्बटूर द्वारा विकसित की गई है। इस किस्म के फल गोलाकार होते हैं जिनका वजन 2 किग्रा. तक होता है। यह किस्म तमिलनाडु के सभी जिलों में उगाने के लिये अनुमोदित की गई है। इस किस्म की उत्पादन क्षमता 360-400 क्विं./ हेक्टेयर है।

राजेन्द्र चमत्कार-यह किस्म राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, समस्तीपुर, बिहार द्वारा विकसित की गई है। इस किस्म के पौधे अधिक उत्पादन देने वाले जिन पर बेलनाकार आकार के फल लगते हैं। फल का वजन 1.5 किग्रा. तक होता है। फलों की प्रथम तुड़ाई बीज बुवाई के 65-70 दिनों बाद की जा सकती है। इस किस्म की उत्पादन क्षमता 175-200 कुन्तल / हेक्टेयर है।

पंत संकर लौकी-1 (पीबीओजीएच-2)-यह संकर किस्म पीबीओजी-22 तथा पीबीओजी-40 के संकरण द्वारा पंतनगर कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर द्वारा विकसित की गई है। इस किस्म के फल मध्यम आकार तथा बेलनाकार होते हैं जिनकी लम्बाई 35 सेंमी. होती है। इस संकर किस्म की उत्पादन क्षमता 400-425 क्विं./हे. है।

नरेन्द्र संकर लौकी-4 (एन0डी0बी0एच0-4) -यह संकर किस्म नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, अयोध्या द्वारा विकसित की गई है। इस किस्म के फल बेलनाकार तथा चमकदार होते हैं। यह किस्म पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड जैसे राज्यों में खेती के लिये अनुमोदित की गई है। इस किस्म की उत्पादन क्षमता 300-350 कुन्तल / हेक्टेयर है।

पंत लौकी-3 (पी0बी0ओ0जी0-61)-यह किस्म पंतनगर कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर द्वारा विकसित की गई है। इस किस्म के फल बेलनाकार, जिनकी लम्बाई 40 सेमी0 तथा हल्के हरे रंग के होते हैं। यह किस्म पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, राजस्थान, गुजरात, हरियाणा तथा दिल्ली जैसे राज्यों में खेती के लिये अनुमोदित की गई है। इस किस्म की उत्पादन क्षमता 350-370 क्विं./हे. है।

पंत संकर लौकी-2 (पीबीओजी-2)-इस संकर किस्म को पीबीओजी-22 तथा पीबीओजी-61 के संकरण द्वारा पंतनगर कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर द्वारा विकसित की गई है। इस किस्म के फल चिकने, हरे तथा 40 सेमी0 लम्बे होते हैं। इस किस्म की पहली तुड़ाई बुवाई के 65 दिनों बाद की जा सकती है। यह किस्म मध्य प्रदेश तथा महाराष्ट्र जैसे राज्यों में खेती के लिये अनुमोदित की गई है। इस संकर किस्म की उत्पादन क्षमता 400-425 कुन्तल / हेक्टेयर है।

आजाद संकर लौकी-1-यह संकर किस्म चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर द्वारा विकसित की गई है। इस किस्म के फल बेलनाकार तथा 30 सेमी0 लम्बे होते हैं। इस संकर किस्म की उत्पादन क्षमता 580-600 कुन्तल / हेक्टेयर है।

पूसा नवीन -लौकी की यह किस्म भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकसित की गई है। उत्तर भारत में गर्मी एवं वर्षा दोनों ऋतुओं में उगाये जाने के लिये उपयुक्त है। इसके फल बेलनाकार, चिकने, हरे, सीधे 20-25 सेमी0 लम्बे एवं औसतन 800-850 ग्राम वजन वाले होते हैं। इस किस्म की उत्पादन क्षमता 400-500 कुन्तल / हेक्टेयर है।

अर्का बहार-इस प्रजाति को भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बंगलौर द्वारा स्थानीय चयन पद्धति द्वारा विकसित किया गया है। फल मध्यम आकार के हल्के हरे, मुलायम एवं चमकीले होते हैं। फल का औसतन भार एक किलोग्राम तक होता है तथा खाने में काफी स्वादिष्ट होते हैं। इसकी भण्डारण क्षमता बहुत अच्छी है। इस किस्म की उत्पादन क्षमता 350-400 क्विं./हेक्टेयर है। यह ग्रीष्म तथा वर्षा दोनों मौसमों में उगाने के लिये उपयुक्त है। यह निर्यात के लिये उत्तम किस्म मानी जाती है।

पंजाब राउण्ड -इस प्रजाति का विकास पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना (पंजाब) से स्थानीय किस्म को सुधार करके किया गया है। फल गोल, मुलायम एवं चमकीले होते हैं। इस किस्म की औसत उपज 300 कुन्तल / हेक्टेयर तक होती है।

पंजाब कोमल-इस प्रजाति का विकास पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना द्वारा एल0सी0-11 (गोल) म एल0सी0-5 (लम्बोत्तर) के बीच संकरण से किया गया है। यह एक अगेती किस्म है जिसके फल बुवाई के 70 दिनों बाद तोड़ने योग्य हो जाते हैं। इसके फल मध्यम आकार, हल्के हरे तथा मुलायम होते हैं। प्रत्येक फल का औसत वजन 600-800 ग्राम होता है। एक लता पर 10-12 फल लगते हैं। इस किस्म की औसत उपज 500 कुन्तल / हेक्टेयर है। यह मोजैक विषाणु के प्रतिरोधी है।

पूसा संदेश-इस प्रजाति का विकास भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा किया गया है। पौधे मध्यम बढ़वार वाले और तनों पर गाँठ कम दूरी पर विकसित होती है। फल गोलाकार, मध्यम आकार व लगभग 600 ग्राम वजन के होते हैं। गर्मी के मौसम में 60-65 दिनों बाद एवं वर्षा काल के बाद 55-60 दिनों बाद फलों की प्रथम तुड़ाई की जा सकती है। इस किस्म की औसत उपज 320 कुन्तल / हेक्टेयर है।

नरेन्द्र रश्मि-इस प्रजाति का विकास नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, अयोध्या द्वारा किया गया है। फल हल्के हरे एवं छोटे होते हैं। फलों का औसत वजन 1.00 किग्रा0 होता है। इस किस्म की औसत उपज 300 क्विं./हे. है। इस प्रजाति में कद्दू का लाल कीट, चूर्णिल व मृदुरोमिल आसिता का प्रकोप कम होता है।

बीज की मात्रा-एक हेक्टेयर खेत के लिये 4-5 किलोग्राम बीज पर्याप्त होता है। सीधी बुवाई के लिये सामान्यतः 2.5-3 किलोग्राम बीज एक हेक्टेयर के लिये पर्याप्त होता है परन्तु पालीथीन के थैलों या नियंत्रित वातावरण युक्त गृहों में पौध ट्रे में नर्सरी उत्पादन करने के लिये 1 किलोग्राम बीज ही पर्याप्त है। एक स्थान पर दो बीज 4-5 सेमी0 की गहराई पर बोना चाहिये।

बीज शोधन-बुवाई के पूर्व बीज को फफूँदनाशक बाविस्टिन की 2 ग्राम दवा प्रति किलोग्राम की दर से मिलाकर शोधित करना चाहिये। ट्राइकोडर्मा पाउडर की 10 ग्राम मात्रा प्रति किलोग्राम सूखे बीज में मिलाकर बुवाई करने से उत्तम परिणाम प्राप्त होते हैं।

बुवाई का समय-लौकी बुवाई मुख्यतः तीन मौसमों में की जाती है। देश के मैदानी क्षेत्रों में ग्रीष्मकालीन फसल के लिये बीजों की बुवाई जनवरी से लेकर फरवरी महीने तक करते हैं। उत्तर भारत में वर्षाकालीन फसल के लिये बीजों की बुवाई मध्य जून-मध्य जुलाई के महीने में करते हैं। लेकिन बीज फसल की बुवाई, जुलाई माह के प्रथम पखवाड़े में करना उत्तम रहता है। इस मौसम में बीज उपज अधिक एवं बीजों का अच्छा विकास होता है। गर्मी के मौसम में बीज उपज कम तथा निम्न गुणवत्ता वाली होती है। कुछ किस्मों को शरद ऋतु में उगाया जा सकता है। शरदकालीन लौकी की बुवाई अक्टूबर-नवम्बर के महीने में की जाती है। इस महीने में लगाई गई फसल को प्रारम्भिक अवस्था में पाले से बचाने हेतु समुचित प्रबंध की आवश्यकता पड़ती है। सामान्यतः शरदकालीन लौकी की खेती आलू व मटर के खेत में लगाकर अगेती फसल के रूप में की जाती है। पर्वतीय क्षेत्रों में लौकी की बुवाई मार्च से मई तक की जाती है।

बुवाई की विधि-गर्मी के मौसम में नाली से नाली की दूरी 2.5-3.5 मीटर रखते हैं और पौध से पौध की दूरी 60-75 सेमी और वर्षा ऋतु में नाली से नाली की दूरी 4 मी. व पौध से पौध की दूरी 80 सेंमी. रखना चाहिये। नाली उत्तर-दक्षिण दिशा में बनाना अधिक उपयुक्त होता है। बुवाई नालियों के मेड़ों पर दोनों तरफ आधी ऊँचाई पर करना चाहिये, जिससे अंकुरण के बाद पौधों की बेल नालियों से बाहर समतल क्यारी में फैल जाये। पूर्णतया जमाव के 10 दिनों बाद कमजोर एवं पतले पौधों को निकालकर थाले में एक ही पौधे को रखना चाहिये।

अश्वगंधा की खेती

विकास प्रताप सिंह वैज्ञानिक एवं नवोन्मेषी अनुसंधान अकादमी (AcSIR) गाजियाबाद, 201002 (उ.प्र.)

पलाश रॉय वनस्पति विज्ञान विभाग विश्व भारती विश्वविद्यालय, शांति निकेतन, (पश्चिम बंगाल)

हिमांशु शर्मा वैज्ञानिक एवं नवोन्मेषी अनुसंधान अकादमी (AcSIR) गाजियाबाद

राकेश चंद्र नैनवाल सीएसआईआर राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ (उ.प्र.)

सामान्य नाम: अश्वगंधा
वानस्पतिक नाम: विथानिया सोमनिफेरा
कुल: सोलेनीऐसी
उपयोगी भाग: जड़, पत्तियां और बीज

सामान्य प्रयोगः यह औषधि मुख्य रूप से आयुर्वेदिक और यूनानी नुस्खों में प्रयोग की जाती है। इस पौधे में ट्यूमर रोधी, ज्वलन रोधी, बैक्टीरिया रोधी, कवकनाशी, कृमिनाशक, तनाव रोधी, शक्तिवर्धक और ज्वरनाशक गुण हैं। इसे अनिद्रा, कमजोरी, अल्सर और ल्यूकोडर्मा

अश्वगंधा: विथानिया सोमनिफेरा
कुल: सोलेनीयेसी

1. जलवायु और मिट्टी: अश्वगंधा (Withania somnifera) एक मजबूत औषधीय पौधा है, जो शुष्क व अर्ध-शुष्क जलवायु में उत्कृष्ट वृद्धि करता है।

* **तापमान:** 20:35°C उपयुक्त।
* **वर्षा** 500:750 मिमी वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र आदर्श हैं।
* **मिट्टी:** हल्की, जल-निकास वाली दोमट या बलुई दोमट मिट्टी सबसे अच्छी रहती है।
* pH 6.5:8.0 के बीच। भारी व पानी भराव वाली मिट्टी उपयुक्त नहीं।

2. बीज बोने की दर और पूर्व उपचार

* **बीज मात्रा:** 1.5:2.0 किग्रा/हेक्टेयर पर्याप्त।
* **बीज शोधन:**
* बोने से पहले थिरम या कार्बेन्डाजिम 2:2.5 ग्राम/किग्रा बीज से उपचार करें।
* अंकुरण बढ़ाने के लिए बीजों को 8:10 घंटे हल्के गर्म पानी में भिगोया जा सकता है।

3. पौध उगाना

अश्वगंधा को सीधे बीज बुवाई या नर्सरी दोनों तरीकों से उगाया जा सकता है।

* **सीधी बुवाई:** पंक्ति में बीज डालें और हल्की पतली परत से ढंक दें।
* **नर्सरी विधि:** 25:30 दिन की पौध तैयार कर रोपाई करें।
* **अंकुरण अवधि:** 10:15 दिन में अंकुर निकल आते हैं।

4. भूमि की तैयारी और खाद डालना

* एक बार गहरी जुताई करके दो:तीन हल्की जुताइयाँ करें।
* मिट्टी को भुरभुरी बनाएं और खरपतवार हटाएं।

खाद एवं उर्वरक:

* 5:6 टन/हेक्टेयर अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद।
* रासायनिक खाद कम मात्रा में:
* नाइट्रोजन 20:25 किग्रा/हेक्टेयर
* फॉस्फोरस 20:25 किग्रा/हेक्टेयर
* आधी खाद बुवाई के समय, बाकी दो माह बाद दें।

5. पौध की दूरी प्राय:

पंक्ति से पंक्ति दूरी: 30:40 सेमी
पौधे से पौधा दूरी: 20:25 सेमी

अच्छी दूरी से जड़ विकास बेहतर होता है और पैदावार भी बढ़ती है।

6. अंतर फसल प्रणाली

अश्वगंधा धीमी गति से बढ़ने वाली फसल है, इसलिए इसे तेजी से बढ़ने वाली फसलों के साथ उगाया जा सकता हैः मूंग, उड़द, तिल, ग्वार यह प्रणाली मिट्टी की उर्वरता बनाए रखती है और कुल आय बढ़ाती है।

कोकोस नुसिफेरा (नारियल), मैंगिफेरा इंडिका (आम), टेक्टोना ग्रैंडिस (टीक), सिमारुबा ऑफिसिनेलिस (सिमारुबा), जटरोफा करकास (जटरोफा), और पॉपुलस केनेडेन्सिस (पॉपुलस) के साथ भी विथानिया की फसल लगाई जा सकती है।

7. सिंचाई

* अश्वगंधा सूखा सहनशील पौधा है और अधिक सिंचाई से नुकसान होता है।
* पहली सिंचाई बुवाई के तुरंत बाद हल्की दें।
* इसके बाद आवश्यकता अनुसार 25:30 दिन के अंतर से 2:3 हल्की सिंचाइयाँ पर्याप्त।
* अंतिम 60:70 दिनों में पानी बिल्कुल न दें, ताकि जड़ों में सक्रिय पदार्थों (Withanolides) की मात्रा बढ़े।

8. कीट और बीमारियां

प्रमुख कीट:

* **दीमक:** पौधे को जड़ से खा सकती है।
* **नियंत्रण:** क्लोरपायरीफॉस 4:5 लीटर/हेक्टेयर सिंचाई पानी में।

प्रमुख बीमारियाँ:

लीफ स्पॉट (Alternaria): पत्तियों पर धब्बे।
नियंत्रण: मैंकोज़ेब 2:2.5 ग्राम/लीटर स्प्रे।

* **जड़ सड़न:** अधिक नमी में होती है।

नियंत्रण: कार्बेन्डाजिम 1.5:2 ग्राम/लीटर। * रोगग्रस्त पौधों को यांत्रिक विधि से हटाना बेहतर होता है। सही जल-निकास, संतुलित खाद और कम सिंचाई से रोग काफी कम होते हैं।

9. फसल पकना और कटाई

* **फसल अवधि:** 150:180 दिन (लगभग 5:6 महीने)।
* जब पत्तियाँ हल्की पीली पड़ जाएँ और फल पककर लाल होने लगें, तब फसल तैयार मानी जाती है।
* पौधों को जड़ों सहित उखाड़ें।
* जड़ों को अच्छी तरह मिट्टी से साफ करें और 3:4 दिन धूप में सुखाएँ।

10. फसल पश्चात प्रबंधन

* सुखी जड़ों को आकार के अनुसार काटें (7:10 सेमी के टुकड़े)।
* फिर 10:12% नमी तक सूखाकर पैकिंग करें।
* बीज निकालने के लिए पके फलों को सुखाकर कूट लें।

11. ग्रेडिंग: फिर पूरे उत्पाद को मोटाई, एकरूपता, शुद्धता, और अंदर की सफेदी के आधार पर चार ग्रेडों में छांटा जाता है।

A ग्रेड: 7 सेमी लंबी, ठोस, 1.0-1.5 सेमी व्यास वाली मोटी, लंबी, चमकदार क्रीम रंग की जड़ें।

B ग्रेड: 5 सेमी लंबी, ठोस, 1 सेमी से कम व्यास वाली मध्यम आकार की जड़ें।

C ग्रेड: 3-4 सेमी लंबी, किनारे की शाखाएं ठोस, 1 सेमी या कम व्यास की जड़।

निम्नतर ग्रेड: छोटे टुकड़े, अर्ध-ठोस, बहुत पतली या बहुत मोटी, कटी हुई अंदर से पीलेपन वाली या दागदार जड़ें।

उच्च ग्रेड की जड़ों को औषधि उद्योग में सबसे अधिक मूल्य मिलता है।

12. उपज और खेती की लागत

उपज:
जड़: 6:10 क्विंटल/हेक्टेयर
बीज: 50:70 किग्रा/हेक्टेयर

कुल लागत: भूमि तैयारी, बीज, खाद, सिंचाई और श्रम सहित लगभग 25,000:35,000 रुपये/हेक्टेयर।

लाभ: बाजार मूल्य के अनुसार अश्वगंधा की जड़ें 80:150 रुपये/किग्रा तक बिकती हैं, जिससे 60,000:1,00,000 रुपये/हे. तक शुद्ध लाभ संभव है।

डॉ. दीपक कोहली विशेष सचिव, उत्तर प्रदेश सचिवालय, 5/104, विपुल खंड, गोमती नगर, लखनऊ (उ.प्र.)

कृषि में रोबोटिक्स : भारतीय खेती का तकनीकी कायांतरण

भारतीय कृषि आज ऐसे निर्णायक दौर से गुजर रही है, जहाँ पारंपरिक पद्धतियाँ अनेक नई और जटिल चुनौतियों के सामने सीमित सिद्ध हो रही हैं। बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने का दबाव, जलवायु परिवर्तन से उपजी मौसम की अनिश्चितता, कृषि श्रमिकों की कमी, भूमि का तीव्र विखंडन तथा उत्पादन लागत में निरंतर वृद्धि, ये सभी कारक खेती को अधिक वैज्ञानिक, सटीक और तकनीक-आधारित बनाने की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं। ऐसे परिवेश में रोबोटिक्स कृषि के लिए एक नवाचारी समाधान बनकर उभर रही है, जो खेती की प्रकृति, गति और उत्पादकता–तीनों को मूल रूप से रूपांतरित करने की क्षमता रखती है।

रोबोटिक्स का आशय केवल मशीनों के प्रयोग तक सीमित नहीं है, बल्कि यह उन स्वचालित और बुद्धिमान प्रणालियों का समुच्चय है जो संवेदनशीलता, विश्लेषण और निर्णय क्षमता से युक्त होती हैं। कृषि रोबोटिक्स में सेंसर तकनीक, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, मशीन लर्निंग, कंप्यूटर विज़न, इंटरनेट ऑफ थिंग्स तथा ड्रोन जैसी उन्नत प्रणालियों का समावेश होता है। इनके माध्यम से खेती अब अनुमान और अनुभव पर नहीं, बल्कि सटीक आंकड़ों और वास्तविक समय की जानकारी पर आधारित होती जा रही है। यह परिवर्तन खेती को अधिक कुशल, लागत-प्रभावी और पर्यावरण-अनुकूल बनाने में सहायक सिद्ध हो रहा है।

मिट्टी किसी भी कृषि प्रणाली की आधारशिला होती है। परंपरागत रूप से किसान मिट्टी की गुणवत्ता का अनुमान अनुभव के आधार पर लगाता रहा है, किंतु आधुनिक रोबोटिक उपकरण मिट्टी की नमी, पोषक तत्वों, पीएच मान और जैविक कार्बन की वास्तविक समय में जाँच करने में सक्षम हैं। इससे फसल चयन से लेकर उर्वरकों के संतुलित प्रयोग तक प्रत्येक निर्णय अधिक वैज्ञानिक बनता है। अति-उर्वरीकरण जैसी समस्याएँ कम होती हैं और मिट्टी की दीर्घकालिक उर्वरता सुरक्षित रहती है। बोआई और रोपाई के क्षेत्र में रोबोटिक्स ने अभूतपूर्व सटीकता प्रदान की है। स्वचालित बीज-बोने वाली प्रणालियाँ बीज की दूरी और गहराई को समान बनाए रखती हैं, जिससे फसल का विकास समरूप होता है। धान, सब्जियों और बागवानी फसलों में रोबोटिक रोपाई न केवल समय और श्रम की बचत करती है, बल्कि रोपण की गुणवत्ता भी बेहतर बनाती है। यह तकनीक विशेष रूप से उन क्षेत्रों के लिए उपयोगी है जहाँ कृषि श्रमिकों की भारी कमी अनुभव की जा रही है। खरपतवार नियंत्रण लंबे समय से कृषि की एक जटिल समस्या रहा है। रासायनिक शाकनाशियों के अत्यधिक प्रयोग से मिट्टी, जल स्रोतों और जैवङ्कविविधता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। रोबोटिक्स आधारित प्रणालियाँ कैमरा और सेंसर की सहायता से फसल और खरपतवार के बीच सटीक अंतर करती हैं तथा केवल अवांछित पौधों को हटाती हैं। इससे रसायनों पर निर्भरता घटती है और जैविक तथा सतत खेती को प्रोत्साहन मिलता है।

सिंचाई प्रबंधन में रोबोटिक्स का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जल संकट से जूझ रहे भारत जैसे देश में जल का विवेकपूर्ण उपयोग अत्यंत आवश्यक है। स्मार्ट सेंसर आधारित प्रणालियाँ मिट्टी की नमी, फसल की आवश्यकता और मौसम पूर्वानुमान के आधार पर ही सिंचाई सुनिश्चित करती हैं। इससे जल की बर्बादी रुकती है, फसल को आवश्यक नमी मिलती है और किसानों की लागत में भी उल्लेखनीय कमी आती है।

ड्रोन तकनीक ने कृषि निगरानी की अवधारणा को नई दिशा दी है। ड्रोन खेतों के ऊपर उड़कर फसल की स्थिति, पत्तियों के रंग, पौधों की ऊँचाई और घनत्व का विश्लेषण करते हैं। इससे रोग, कीट प्रकोप अथवा पोषक तत्वों की कमी का पता प्रारंभिक अवस्था में ही चल जाता है। लक्षित छिड़काव की सुविधा के कारण रसायनों की मात्रा घटती है और पर्यावरणीय संतुलन बना रहता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित प्रणालियाँ फसल रोगों की पहचान में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। पत्तियों की बनावट और रंग में होने वाले सूक्ष्म परिवर्तनों के आधार पर ये प्रणालियाँ संभावित रोगों की पहचान कर लेती हैं। इससे समय रहते उपचार संभव होता है और किसानों को होने वाले भारी आर्थिक नुकसान से बचाव होता है।

कटाई के समय श्रमिकों की अनुपलब्धता कृषि के लिए एक गंभीर चुनौती बनती जा रही है। हार्वेस्टिंग रोबोट फल और सब्जियों की परिपक्वता को पहचानकर उन्हें बिना क्षति पहुँचाए तोड़ सकते हैं। विशेषकर बागवानी फसलों में यह तकनीक अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रही है। कटाई के बाद ग्रेडिंग, पैकेजिंग और भंडारण में भी रोबोटिक्स गुणवत्ता बनाए रखने में सहायक सिद्ध होती है। फसल उत्पादन के साथ-साथ पशुपालन और डेयरी क्षेत्र में भी रोबोटिक्स का दायरा लगातार बढ़ रहा है। स्वचालित दुग्धङ्कदोहन प्रणालियाँ न केवल दुग्ध उत्पादन को अधिक स्वच्छ और कुशल बनाती हैं, बल्कि पशुओं के स्वास्थ्य की निरंतर निगरानी भी करती हैं। पशुओं की गतिविधियों और आहार पर आधारित आंकड़ों के माध्यम से रोग की पूर्वङ्कसंभावना का अनुमान भी लगाया जा सकता है। भारत में कृषि रोबोटिक्स अभी प्रारंभिक अवस्था में है, किंतु इसकी संभावनाएँ अत्यंत व्यापक हैं। छोटे और सीमांत किसानों की अधिकता को देखते हुए कम लागत वाली, बहुउद्देश्यीय और स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप तकनीकों की आवश्यकता है। इस दिशा में भारतीय स्टार्टअप, शैक्षणिक संस्थान और अनुसंधान केंद्र उल्लेखनीय प्रयास कर रहे हैं। हालाँकि, चुनौतियाँ भी कम नहीं हैं। उच्च प्रारंभिक लागत, तकनीकी प्रशिक्षण की कमी, मरम्मत एवं रखरखाव की समस्याएँ तथा डिजिटल साक्षरता का अभाव इसके व्यापक प्रसार में बाधा बनते हैं। इन चुनौतियों से निपटने के लिए सरकारी नीतिगत समर्थन, सब्सिडी, प्रशिक्षण कार्यक्रम, किसानङ्कउन्मुख जागरूकता और कस्टम हायरिंग सेंटर जैसे मॉडल प्रभावी सिद्ध हो सकते हैं। कृषि में रोबोटिक्स का एक महत्वपूर्ण सामाजिक पक्ष भी है। परंपरागत खेती में अत्यधिक श्रमसाध्य और जोखिमपूर्ण कार्यों को प्रायः ग्रामीण श्रमिकों द्वारा किया जाता है। रोबोटिक्स इन कार्यों को स्वचालित कर मानव श्रम को अधिक सुरक्षित, कुशल और सम्मानजनक भूमिका प्रदान कर सकती है। इससे कौशल उन्नयन के अवसर बढ़ेंगे और ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीकी रोजगार के नए द्वार खुलेंगे।

दीर्घकालिक दृष्टि से रोबोटिक्स आधारित कृषि जलवायु परिवर्तन से निपटने की भारतीय रणनीति का भी एक प्रभावी उपकरण बन सकती है। सटीक खेती के माध्यम से ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी, जल और उर्वरकों का संतुलित उपयोग तथा मिट्टी की जैविक गुणवत्ता का संरक्षण संभव है। जब खेती अधिक वैज्ञानिक और पर्यावरणङ्कअनुकूल होगी, तभी खाद्य सुरक्षा के साथ-साथ पारिस्थितिक संतुलन भी सुनिश्चित किया जा सकेगा। इस प्रकार कृषि में रोबोटिक्स भारतीय खेती के लिए केवल एक तकनीकी विकल्प नहीं, बल्कि भविष्य की अनिवार्यता है। यदि इसे समावेशी दृष्टिकोण और किसान-हितैषी नीतियों के साथ अपनाया जाए, तो यह भारतीय कृषि को नई स्थिरता, सुरक्षा और समृद्धि की दिशा में निर्णायक रूप से अग्रसर कर सकती है।

01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

प्राकृतिक खेती एवं इसके प्रमुख घटक

ललित नारायण सोनू, डॉ. संपूर्णा नन्द सिंह
सलोनी कुमारी, काजल कुमारी
U M.Sc (Horticulture) Vegetable Science,
Integral University, Lucknow (U.P.)

प्राकृतिक खेती एक ऐसी कृषि प्रणाली है जिसमें खेती प्राकृतिक सिद्धांतों के आधार पर की जाती है। इसमें रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों या महंगे बाहरी इनपुट का उपयोग नहीं होता, बल्कि स्थानीय संसाधनों-गाय का गोबर-गोमूत्र, फसल अवशेष, नीम, जीवामृत आदिकृका उपयोग किया जाता है।

प्राकृतिक खेती के मूल सिद्धांत -* रासायनिक खाद और कीटनाशक का उपयोग नहीं * मिट्टी की उर्वरता को प्राकृतिक तरीकों से बढ़ाना * लागत बहुत कम, लगभग शून्य बजट * देसी गाय आधारित खेती * पर्यावरण-अनुकूल और टिकाऊ प्रणाली * मिट्टी में सूक्ष्मजीवों को बढ़ावा * फसल और पर्यावरण दोनों सुरक्षित

प्राकृतिक खेती के प्रमुख घटक

बीजामृत: बीजामृत प्राकृतिक खेती का पहला और आवश्यक घटक है, जिसका उपयोग बीज को रोगमुक्त करने और अंकुरण बढ़ाने के लिए किया जाता है। इसमें देसी गाय का गोबर-गोमूत्र, चूना और मिट्टी का घोल मिलाया जाता है। यह बीज को सुरक्षा कवच देता है और रासायनिक बीज उपचार की आवश्यकता समाप्त करता है।किसी भी फसल के बीजों को बोने से पहले, बीजों को बीजामृत से उपचारित करके बुआई करनी चाहिए। बीजों को बीजामृत से उपचारित करके कुछ देर सूखने के लिए छोड़ दें। बीजों पर लगे बीजामृत सूखने के बाद बीजों की बुआई करना चाहिए ।

बीजामृत में लगने वाली सामग्री (100 किग्रा. बीज हेतु)

देसी गाय का गोबर	-	5 किग्रा.
देसी गाय का गोमूत्र	-	5 लीटर
चूना	-	250 ग्राम

बड़े पेड़ (पीपल) के जड़ के पास की मिट्टी-200 ग्राम
पानी -20 लीटर

बनाने की विधि- इस सभी सामग्री को किसी बडे बर्तन में डालकर एक साथ मिला दें। इस मिश्रण को चौबीस घंटे तक रखा रहने दें लेकिन दिन में दो बार लकड़ी से जरूर हिलाएं।

उपयोग- बीज बोने से पहले बीज को 30 मिनट तक इस घोल में डुबोएँ और फिर इस बीज को छाया में सुखाए फिर बीज सुख जाने के बाद इसकी बुवाई करें।

जीवामृत- जीवामृत मिट्टी के लिए जीवनदायी अमृत जैसा है। यह देसी गाय आधारित सूक्ष्मजीवों से भरपूर जैविक घोल है, जिसे फसलों पर नियमित रूप से दिया जाता है। इससे मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ती है, पोषक तत्व आसानी से उपलब्ध होते हैं और पौधों की वृद्धि स्वाभाविक रूप से तेज होती है।

जीवामृत बनाने की विधि (प्रति एकड़)

पानी	-	180 लीटर
देसी गाय का गोबर	-	10 किग्रा.
देसी गाय का गोमूत्र	-	10 लीटर
बेसन+गुड़	-	1 से 2 किग्रा.
मिट्टी	-	200 ग्राम

यह सब जीचें मिलाने के बाद मिश्रण को 86 घंटों के लिए छाया में कपड़े से बोरे से ढंककर रख दें और इसे 6 दिन तक सुबह-शाम 5 मिनट अच्छी तरह मिलाएंफिर मिश्रण इस्तेमाल के लिए तैयार हो जाएगा। गर्मी में 7 दिनों तक एवं जाड़े में 15 दिनों तक इस्तेमाल कर सकते हैं।

घनजीवामृत: घनजीवामृत जीवामृत का ठोस रूप है, जिसका उपयोग मिट्टी में मिलाकर किया जाता है। यह लंबे समय तक प्रभावी रहता है और सूक्ष्मजीव गतिविधि को लगातार बढ़ाता है। इससे मिट्टी की संरचना सुधरती है, कार्बनिक पदार्थ बढ़ते हैं और फसलों को धीरे-धीरे पोषण मिलता रहता है।

घनजीवामृत बनाने की विधि

देसी गाय का गोबर	-	100 किग्रा.
देसी गाय का गोमूत्र	-	3 लीटर
गुड़	-	1 किग्रा.
बेसन	-	2 किग्रा.
मिट्टी	-	250 ग्राम

इसे बनाने के लिए 100 किलो देसी गाय के गोबर में 1 किलो गुड़ और 2 किलो दाल का आटा मिलायें।इस पर 3 लीटर गोमूत्र डालें आवश्यकतानुसार और अच्छी तरह मिलाएं।अब इस घन जीवामृत को छांव में अच्छी तरह फैलाकर सुखा लें।फिरसूखने के बाद इसको लकड़ी से पीटकर बारीक कर लें।औरइसे बुवाई के समय या पानी देने के 2 से 3 दिन बाद फसल में प्रयोग कर सकते हैं।सूखे घन जीवामृत को 6 महीने तक भण्डारित किया जा सकता है।

वफसा - वफसा का अर्थ है मिट्टी में पानी और हवा का संतुलन बनाए रखना। इसमें पौधों को न अधिक पानी दिया जाता है न कम, बल्कि इतनी नमी रखी जाती है कि जड़ों को पोषक तत्व आसानी से मिलें। इससे फसलें मजबूत रहती हैं और उत्पादन भी बेहतर होता है।

पलवार(मल्चिंग)- प्राकृतिक खेती में मल्चिंग मिट्टी को ढककर उसकी नमी, तापमान और संरचना को संतुलित रखती है। सूखी घास, पत्तियाँ या फसल अवशेष मिट्टी के ऊपर बिछाकर नमी संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण और जैविक पदार्थ की बढ़ोत्तरी सुनिश्चित की जाती है। इससे मिट्टी जीवित और स्वस्थ रहती है।

विभिन्न सामग्रियों के अन्तर्गत जीवामृत में जीवाणुओं की संख्या

सामग्री	जीवाणुओं की संख्या
गया का गोबर + गाय का मूत्र मिट्टी	3,00,000
गाय का गोबर + गाय का मूत्र+ मिट्टी + बेसन	25,00,00,000
गाय का गोबर, गाय का मूत्र+ मिट्टी + बेसन+ गुड़	74,00,00,00,000

प्राकृतिक खेती के लाभ

1. मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है
2. खेती की लागत बहुत कम होती है
3. फसल की गुणवत्ता व पोषकता बढ़ती है
4. पर्यावरण और जैव विविधता की सुरक्षा
5. किसान की आय व स्थिरता बढ़ती है

निष्कर्ष-प्राकृतिक खेती आज की कृषि आवश्यकताओं के लिए एक टिकाऊ, सुरक्षित और किफायती समाधान प्रदान करती है। यह पद्धति न केवल मिट्टी, जल और पर्यावरण को बचाती है, बल्कि किसान की उत्पादन लागत भी कम करती है, जिससे वह आत्मनिर्भर और आर्थिक रूप से मजबूत बनता है। देसी गाय आधारित इनपुट, जीवामृत, बीजामृत, मल्चिंग और वफसा जैसी तकनीकें मिट्टी के स्वास्थ्य को पुनर्जीवित करती हैं और फसलों को प्राकृतिक पोषण देकर उनकी गुणवत्ता व पोषकता बढ़ाती हैं। आज जब रासायनिक खेती से मिट्टी की उर्वरता घट रही है और लागत बढ़ रही है, ऐसे समय में प्राकृतिक खेती एक स्थायी विकल्प के रूप में उभरकर सामने आई है। यह न केवल किसानों बल्कि उपभोक्ताओं, पर्यावरण और आने वाली पीढ़ियों के लिए भी सुरक्षित व लाभकारी पद्धति है।

12/2025-26

खरीफ मौसम में उत्तर भारत में जैविक धान की खेती : तकनीक, लाभ और प्रबंधन

यश कुमार गुप्ता, डॉ. अनिल कुमार सिंह
चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
नवाबगंज, कानपुर नगर (उ.प्र.)

1.प्रस्तावना : भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ धान (Oryza sativa L.) प्रमुख खाद्यान्न फसल के रूप में किसानों की आजीविका की रीढ़ मानी जाती है। विशेष रूप से उत्तर भारत के राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा, पंजाब, उत्तराखंड और मध्य प्रदेश के कुछ भागों में खरीफ मौसम (जून से अक्टूबर) के दौरान धान की खेती व्यापक रूप से की जाती है।जैविक धान उत्पादन पर यह लेख केंद्रित है। इसमें भूमि तैयारी, बीज, पोषण, कीट एवं रोग नियंत्रण,लाभ,चुनौतियाँ, सरकार योजनाएं और आर्थिक पहलुओं की समग्र विवेचना की गई है।

2. खरीफ मौसमी जैविक धान का महत्व: ज़्जैविक धान उत्पादन में गोबर खाद, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद, अजोटोबैक्टर, पीएसबी (फॉस्फेट सॉल्युबिलाइजिंग बैक्टीरिया) आदि का प्रयोग किया जाता है, जिससे मिट्टी की संरचना सुधरती है। इससे ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में लगभग 20-25% तक कमी देखी गई है।जैविक धान की कीमत बाजार में सामान्य धान से 20-40% अधिक मिलती है।भारत में वर्ष 2023-24 में लगभग 3.5 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में जैविक धान की खेती की गई (APEDA डेटा, 2024)। निर्यात के स्तर पर, जैविक बासमती धान से भारत को रु. 4500 करोड़ से अधिक की विदेशी आय प्राप्त हुई। रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता घटने से उत्पादन लागत 15ङ्क20त्न तक कम होती है।मिट्टी की जलधारण क्षमता और सूक्ष्मजीव क्रियाशीलता बढ़ने से दीर्घकालिक उत्पादकता स्थिर रहती है।जैविक धान की खेती से स्वास्थ्य जोखिम और जल प्रदूषण में कमी आती है।

3. उत्तर भारत में धान की खेती की परिस्थितियां: उत्तर भारत में धान की खेती मुख्य रूप से खरीफ़ मौसम (जून से नवंबर) के दौरान की जाती है। इस अवधि में तापमान और वर्षा की परिस्थितियाँ धान की वृद्धि के लिए अत्यंत अनुकूल रहती हैं। अंकुरण हेतु 25 से 35 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त होता है, जबकि पौधे की वृद्धि और विकास के लिए 20 से 30 डिग्री सेल्सियस तापमान आदर्श माना जाता है। धान एक अधिक जल की आवश्यकता वाली फसल है, इसलिए इसके लिए 100 से 150 सेंटीमीटर वार्षिक वर्षा आवश्यक होती है। ऐसी जलवायु धान की सिंचित एवं असिंचित दोनों प्रकार की खेती के लिए अनुकूल मानी जाती है। मिट्टी के प्रकार की बात करें तो दोमट, चिकनी दोमट या बलुई दोमट मिट्टी, जिनमें जल धारण करने की क्षमता अधिक हो, धान की खेती के लिए सर्वोत्तम होती हैं। इसके साथ ही मिट्टी का pH मान 5.5 से 7.5 के बीच होना चाहिए, ताकि पौधों को पोषक तत्वों की उपलब्धता पर्याप्त मात्रा में मिल सके। इन उपयुक्त परिस्थितियों के कारण उत्तर भारत के राज्य जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा, पंजाब और उत्तराखंड धान उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

4.प्रमुख जैविक धान की किस्में (राज्यवार)

उत्तर प्रदेश — NDR-359, पूसा बासमती-1, नरेंद्र उसर धान -3,पुसा बासमती-1509, CSR-30,पंतधान-4

बिहार—सीता, राजेंद्र कस्तूरी धन, पूसा सुगंधा-5,सहभागी धान,वीरेंद्र धान-82,आर-पी-बायो-226,सरजू-52,

पंजाब —पूसा बासमती-1121, PR-118, PR-121

हरियाणा— PR-126, CSR-36, HKR-47

उत्तराखंड— नरेंद्र धान-97, पंत धान-10

5. भूमि तैयारी एवं बीज चयन: धान की सफल खेती के लिए खेत की तैयारी अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। सबसे पहले एक बार गहरी जुताई करनी चाहिए, जिससे पिछली फसल के अवशेष नष्ट हो जाएँ और मिट्टी की ऊपरी सतह ढीली हो सके। इसके बाद दो से तीन हल्की जुताइयाँ करके मिट्टी को भुरभुरी और समान बना लेना चाहिए, ताकि रोपाई के समय पौधों की जड़ें आसानी से फैल सकें। जुताई के पश्चात खेत में पानी भरकर पडलिंग करना आवश्यक होता है, जिससे खरपतवारों का नियंत्रण होता है और मिट्टी में नमी का संरक्षण बना रहता है। इसके अतिरिक्त, धान की रोपाई से लगभग 45 दिन पहले हरित खाद के रूप में ढैंचा, सनहेम्प या मूँग जैसी फसलों की बुवाई करके उन्हें मिट्टी में पलट देना चाहिए। इससे मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है और पौधों की वृद्धि के लिए अनुकूल वातावरण तैयार होता है।

बीज उपचार एवं नर्सरी प्रबंधन: बीज उपचार के लिए ट्राइकोडर्मा विराइड का प्रयोग 10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से करना चाहिए। इसके अतिरिक्त एज़ोस्पिरिलम और फॉस्फेट सॉल्युबिलाइजिंग बैक्टीरिया कल्चर से बीजों का उपचार करने पर अंकुरण की क्षमता में वृद्धि होती है तथा पौधों की जड़ वृद्धि भी बेहतर होती है। नर्सरी की तैयारी के लिए लगभग 10×1 मीटर आकार के बेड तैयार किए जाने चाहिए। एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिए लगभग 25 से 30 किलोग्राम बीज पर्याप्त मात्रा होती है। जैविक नर्सरी तैयार करते समय गोमूत्र, नीमखली और जैविक कम्पोस्ट का उपयोग करना अत्यंत लाभकारी होता है, क्योंकि ये तत्व पौधों को आवश्यक पोषण प्रदान करने के साथ-साथ मिट्टी की उर्वरता को भी बनाए रखते हैं। इस प्रकार के जैविक उपायों से स्वस्थ एवं सशक्त पौध तैयार किए जा सकते हैं जो आगे चलकर अधिक उत्पादन देने में सक्षम होते हैं।

6. प्रत्यारोपण: लगभग 20 से 25 दिन की आयु में पौधें प्रत्यारोपण हेतु उपयुक्त हो जाती हैं। प्रत्यारोपण के समय प्रत्येक स्थान पर 2 से 3 स्वस्थ पौधे लगाने चाहिए ताकि पौधों का विकास संतुलित रूप से हो सके। पौधों की कतारों के बीच लगभग 20 से 25 सेंटीमीटर तथा पौधे से पौधे के बीच 15 से 20 सेंटीमीटर की दूरी बनाए रखना उचित रहता है। इससे पौधों को पर्याप्त पोषण, धूप और हवा मिलती है, जिससे उनकी वृद्धि और उपज बेहतर होती है।

7. जैविक पोषण प्रबंधन: धान की जैविक खेती में पोषक तत्वों की आपूर्ति के लिए प्राकृतिक और देशज स्रोतों का उपयोग अत्यंत आवश्यक है। भूमि की तैयारी के समय प्रति हेक्टेयर 10 से 15 टन गोबर की सड़ी हुई खाद मिलाना लाभकारी रहता है, जिससे मिट्टी की उर्वरता और संरचना में सुधार होता है। इसके अतिरिक्त, रोपाई से पहले 2 से 3 टन प्रति हेक्टेयर वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग करने से पौधों को आवश्यक पोषक तत्व संतुलित मात्रा में प्राप्त होते हैं। नाइट्रोजन की पूर्ति हेतु ढैंचा या सनहेम्प जैसी हरी खाद की फसल बोकर लगभग 45 दिन बाद उसे मिट्टी में पलट देना चाहिए, जिससे जैविक नाइट्रोजन का अच्छा स्रोत प्राप्त होता है। फसल की वृद्धि और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने हेतु नीम की पत्ती का घोल या गोमूत्र अर्क का 3 से 4 बार छिड़काव करना भी अत्यंत लाभदायक होता है। इन सभी उपायों के समन्वित प्रयोग से मिट्टी की गुणवत्ता, फसल की वृद्धि तथा उत्पादन दोनों में सुधार देखा जाता है।

जैव उर्वरक: जैव उर्वरक प्राकृतिक रूप से पाई जाने वाली सूक्ष्म जीवों की ऐसी उपयोगी प्रजातियाँ हैं जो पौधों की वृद्धि और मृदा की उर्वरता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। राइजोबियम एक प्रभावी नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाला जीवाणु है, जो दलहनी फसलों की जड़ों में गाँठें बनाकर वातावरणीय नाइट्रोजन को स्थिर रूप में परिवर्तित करता है, जिससे पौधों को आवश्यक नाइट्रोजन की आपूर्ति होती है। एज़ोस्पिरिलम) भी नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सहायक होता है और साथ ही पौधों की जड़ों के विकास को प्रोत्साहित करता है। फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु मृदा में उपस्थित अनुपलब्ध फॉस्फोरस को घुलनशील रूप में बदलकर पौधों के लिए उपलब्ध कराते हैं, जिससे उनकी वृद्धि और उत्पादन में वृद्धि होती है। वहीं, एज़ोटोबैक्टर न केवल नाइट्रोजन स्थिरीकरण करता है, बल्कि यह पौधों की जड़ वृद्धि में सुधार लाता है और रोगों के प्रति पौधों की प्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ाता है।

8. कीट एवं रोग प्रबंधन: जैविक कीटनाशकों के उपयोग से फसलों को हानिकारक कीटों से सुरक्षित रखते हुए पर्यावरण को भी स्वच्छ रखा जा सकता है। इसके लिए नीम तेल 5% या नीम अर्क 3% का छिड़काव प्रभावी रहता है। साथ ही, ट्राइकोग्राम्मा चिलोनिस कार्ड (प्रति एकड़ 50 कार्ड) का उपयोग कीटों के अंड चरण को नष्ट करने में सहायक होता है। बैक्टीरिया आधारित Bt (बैसिलस थुरिंजिएंसिस)का स्प्रे भी एक उत्तम जैविक उपाय है। इसके अतिरिक्त, पानी में गोमूत्र, छाछ और लहसुन अर्क मिलाकर छिड़काव करने से फसलों पर प्राकृतिक रूप से कीट नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है।

प्रमुख रोगों का नियंत्रण-धान की फसल में कई प्रमुख रोग और कीट दिखाई देते हैं। झुलसा रोग में पत्तियों पर छोटे-छोटे भूरे धब्बे बन जाते हैं, जिससे पत्तियां सूखने लगती हैं। इसके नियंत्रण हेतु ट्राइकोडर्मा हार्ज़ियानम या नीम पत्ती का घोल छिड़कना लाभकारी होता है। शीथ ब्लाइट रोग में तनों पर सड़न दिखाई देती है, जिससे पौधा कमजोर होकर गिरने लगता है। इसके नियंत्रण हेतु गोमूत्र में तुलसी अर्क मिलाकर छिड़काव करना प्रभावी उपाय है। तना छेदक कीट के प्रकोप में पौधा बीच से मुड़ जाता है या सूख जाता है। इसके नियंत्रण हेतु फेरोमोन ट्रैप या ट्राइकोग्रामा कार्ड का उपयोग करना उचित होता है।

9. जल प्रबंधन-जैविक खेती में "ऑल्टरनेट वेटिंग एंड ड्राइंग" तकनीक अपनाना अत्यंत लाभदायक होता है। इस पद्धति में खेत में लगातार जलभराव नहीं किया जाता, जिससे मिट्टी में वायु संचार बना रहता है और मिथेन गैस का उत्सर्जन कम होता है। खेत में हल्की नमी बनाए रखना पर्याप्त होता है, ताकि फसल को आवश्यक जल मिलता रहे, लेकिन जलजमाव न होने पाए। यह तरीका न केवल जल की बचत करता है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण और फसल की बेहतर वृद्धि में भी सहायक होता है।

10. खरपतवार प्रबंधन: रोपाई के लगभग 20 और 40 दिन बाद हाथ से निराई-गुड़ाई करना आवश्यक होता है, जिससे खेत में उगने वाले खरपतवारों पर नियंत्रण रखा जा सके। साथ ही, कोनो वीडर का उपयोग करने से न केवल खरपतवार नियंत्रण में मदद मिलती है, बल्कि मिट्टी की जड़ वायुसंचार क्षमता भी बढ़ती है। इसके अतिरिक्त, खेत में धान के भूसे जैसे जैविक मल्च का उपयोग करने से खरपतवारों की वृद्धि रुकती है और नमी का संरक्षण भी बेहतर होता है।

11. फसल की कटाई एवं भंडारण-फसल की कटाई उस समय करें जब लगभग 80-85% दाने पक चुके हों। कटाई के बाद अनाज को अच्छी तरह सुखाएँ ताकि उसकी नमी 14% या उससे कम रह जाए। भंडारण के दौरान कीटों से सुरक्षा के लिए नीम की पत्तियों या धुएँ का प्रयोग करें। यदि संभव हो, तो फसल का जैविक प्रमाणन प्राप्त करें, जिससे बाजार में उसका मूल्य और प्रतिष्ठा दोनों बढ़ेंगे।

12.जैविक धान खेती के लाभ-जैविक धान की खेती से मृदा स्वास्थ्य में काफी सुधार होता है क्योंकि इसमें जैविक पदार्थों की मात्रा और सूक्ष्मजीवों की सक्रियता बढ़ती है। इससे रासायनिक उर्वरक और कीटनाशकों का अपवाह कम होता है, जिससे जल प्रदूषण कम होता है। जैविक तरीकों से बनाया गया खाना न केवल उच्च गुणवत्ता वाला होता है, बल्कि पोषक तत्वों से भरपूर भी होता है। यह प्रक्रिया मृदा की उत्पादकता और स्थायित्व को बरकरार रखती है। यह भी जैव विविधता और पर्यावरणीय संतुलन को बचाता है। जैविक धान को सामान्य धान की तुलना में 20 से 30% अधिक मूल्य मिलता है, जो इसे आर्थिक रूप से लाभदायक बनाता है।

13.चुनौतियां: जैविक खेती के शुरूआती वर्षों में उपज में कमी होती है क्योंकि प्राकृतिक रूप से भूमि की उर्वरता पुनर्स्थापित होने में समय लगता है। इसके अलावा, जैविक इनपुट, जैसे जैविक खाद, उर्वरक और कीटनाशक, सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं, जो किसानों को बहुत मुश्किल बना देता है। साथ ही, जैविक उत्पादों के प्रमाणन की कठिन और समय लेने वाली प्रक्रिया से कई किसान हिचकिचाते हैं। इसके अलावा, किसानों में जागरूकता की कमी और बेहतर विपणन प्रणाली के अभाव से जैविक उत्पादों को उचित बाजार नहीं मिल पाता।

14.समाधान एवं सुधार के उपाय: किसानों को जैविक खेती के प्रति जागरूक करने के लिए नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए, जिससे वे आधुनिक तकनीकों और जैविक तरीकों की जानकारी प्राप्त कर सकें। साथ ही, क्लस्टर आधारित जैविक खेती को बढ़ावा देकर सामूहिक उत्पादन और विपणन की दिशा में कदम उठाना आवश्यक है। स्थानीय स्तर पर जैविक इनपुट इकाइयों की स्थापना से किसानों को सस्ते और गुणवत्तापूर्ण जैविक उत्पाद आसानी से उपलब्ध होंगे। इसके अलावा, सरकारी योजनाओं जैसे परम्परागत कृषि विकास योजना और राष्ट्रीय कृषि बाजार का प्रभावी उपयोग कर किसानों की आय में वृद्धि और जैविक उत्पादों के विपणन को प्रोत्साहन दिया जा सकता है।

15. निष्कर्ष: उत्तर भारत में जैविक धान की खेती आज के समय में एक अत्यंत महत्वपूर्ण और स्थायी कृषि विकल्प के रूप में उभर रही है। यह खेती न केवल मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखती है, बल्कि जल संसाधनों के संरक्षण और मानव स्वास्थ्य की सुरक्षा में भी अहम भूमिका निभाती है। रासायनिक खादों और कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग से जहाँ पर्यावरण को नुकसान पहुँचता है, वहीं जैविक खेती प्राकृतिक संसाधनों के संतुलन को बनाए रखते हुए उत्पादन को टिकाऊ बनाती है। जैविक धान उत्पादन में गोबर की खाद, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद, नीम आधारित जैव कीटनाशक और जैव उर्वरकों जैसे आज़ोटोबैक्टर, राइजोबियम तथा पीएसबी (फॉस्फेट सॉल्युबिलाइजिंग बैक्टीरिया) का प्रयोग किया जाता है, जो मिट्टी की संरचना और सूक्ष्मजीव गतिविधियों को प्रोत्साहित करते हैं। यह पद्धति पारंपरिक कृषि ज्ञान और आधुनिक वैज्ञानिक प्रबंधन तकनीकों का सुंदर समन्वय प्रस्तुत करती है, जिससे उत्पादन की गुणवत्ता तो बढ़ती ही है, साथ ही पर्यावरण भी सुरक्षित रहता है। जैविक धान की खेती अपनाने से किसानों की आय में स्थिरता आती है, क्योंकि जैविक उत्पादों की बाजार में अच्छी मांग और ऊँचा मूल्य प्राप्त होता है। यदि किसान इसे वैज्ञानिक ढंग से अपनाएँ, उचित प्रशिक्षण लें और स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार प्रबंधन करें, तो यह पद्धति न केवल पर्यावरण के लिए लाभकारी सिद्ध होगी, बल्कि भारत के कृषि भविष्य को स्वच्छ, टिकाऊ और समृद्ध दिशा भी प्रदान करेगी।

भारत में कृषि उत्पादन बढ़ाने में ड्रोन का योगदान

रजनीश पाल यादव (शोध छात्र) कीट विज्ञान विभाग
सविता पटेल (शोध छात्र) सस्य विज्ञान विभाग
आशुतोष पाल शोध छात्र, कीट विज्ञान विभाग, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी वि.वि. मेरठ (उ.प्र.)

प्रस्तावना

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ लगभग 60% जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर करती है। आधुनिक युग में बढ़ती जनसंख्या, घटती भूमि, और जलवायु परिवर्तन जैसी चुनौतियों ने किसानों के सामने नई मुश्किलें खड़ी कर दी हैं। ऐसे समय में तकनीक आधारित खेती की आवश्यकता महसूस की जा रही है। इन्हीं आधुनिक तकनीकों में से एक है ड्रोन जो कृषि क्षेत्र में एक क्रांतिकारी बदलाव लेकर आया है।ड्रोन, जिसे मानव रहित हवाई यान भी कहा जाता है, अब केवल फोटोग्राफी या सेना तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह खेती को अधिक सटीक, तेज़ और लाभदायक बना रहा है।

ड्रोन क्या है और कृषि में इसका उपयोग कैसे होता है

ड्रोन एक छोटी उड़ने वाली मशीन होती है जिसे रिमोट या सॉफ्टवेयर के माध्यम से नियंत्रित किया जाता है। इसमें हाई-रिज़ॉल्यूशन कैमरा, सेंसर, ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम, (जीपीएस), और डेटा एनालिसिस सिस्टम लगाए जाते हैं। **कृषि में ड्रोन का उपयोग मुख्यत: निम्न कार्यो में किया जाता है-**

1.फसल की निगरानी

ड्रोन ऊँचाई से खेतों की तस्वीरें और वीडियो लेकर फसल की स्थिति का विश्लेषण करते हैं। इससे किसान को पता चलता है कि कौन-सा क्षेत्र स्वस्थ है और कहाँ सुधार की आवश्यकता है।

2.खाद एवं कीटनाशक छिड़काव

ड्रोन के माध्यम से समान रूप से खाद और दवाओं का छिड़काव किया जा सकता है, जिससे समय और श्रम दोनों की बचत होती है तथा पर्यावरणीय नुकसान भी कम होता है।

3.बीज बोना

आधुनिक ड्रोन अब बीज बोने का कार्य भी करने लगे हैं, जिससे कठिन इलाकों में खेती करना आसान हो गया है।

4.मिट्टी और जल विश्लेषण

सेंसरयुक्त ड्रोन मिट्टी की नमी, तापमान और पोषक तत्वों की मात्रा का पता लगाते हैं, जिससे किसान सही निर्णय ले पाते हैं।

कृषि उत्पादन बढ़ाने में ड्रोन का योगदान

1.सटीक खेती को बढ़ावा

ड्रोन किसानों को खेत के प्रत्येक हिस्से की सटीक जानकारी प्रदान करते हैं। इससे किसान आवश्यकतानुसार

ही खाद, पानी और दवाओं का उपयोग करता है, जिससे उत्पादन बढ़ता है और लागत घटती है।

2.समय और श्रम की बचत

पहले जहाँ एक एकड़ भूमि पर कीटनाशक छिड़कने में कई घंटे लगते थे, अब ड्रोन यह कार्य कुछ ही मिनटों में कर देते हैं। इससे किसान को बाकी कार्यों पर अधिक ध्यान देने का समय मिलता है।

3.फसल क्षति का समय रहते पता लगाना

ड्रोन की मदद से रोग, कीट या जल की कमी जैसी समस्याओं का जल्दी पता लग जाता है, जिससे किसान तुरंत कदम उठाकर नुकसान कम कर सकते हैं।

4.जल और संसाधनों का कुशल उपयोग

ड्रोन की मदद से यह तय किया जा सकता है कि खेत के किस हिस्से में अधिक या कम पानी की आवश्यकता है। इससे जल की बचत होती है और फसल की गुणवत्ता भी बेहतर होती है।

5.फसल उत्पादन का पूर्वानुमान

ड्रोन द्वारा एकत्र किए गए डेटा से फसल की मात्रा और गुणवत्ता का अनुमान लगाया जा सकता है, जिससे किसान अपनी योजना पहले से बना सकता है।

भारत में ड्रोन तकनीक की स्थिति

भारत सरकार ने कृषि में ड्रोन के प्रयोग को प्रोत्साहित करने के लिए कई कदम उठाए हैं।

* प्रधानमंत्री किसान ड्रोन योजना के तहत किसानों और कृषि संगठनों को ड्रोन खरीदने पर अनुदान दिया जा रहा है।
* भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद और कई राज्य कृषि विश्वविद्यालयों ने ड्रोन आधारित कृषि प्रयोग शुरू किए हैं। इन पहलों से उम्मीद है कि आने वाले वर्षों में ड्रोन तकनीक ग्रामीण भारत में तेजी से लोकप्रिय होगी।

निष्कर्ष

ड्रोन तकनीक कृषि क्षेत्र के लिए एक वरदान साबित हो सकती है। इससे न केवल उत्पादन में वृद्धि होगी, बल्कि खेती को पर्यावरण के अनुकूल और टिकाऊ बनाया जा सकेगा। आधुनिक युग में जब हर क्षेत्र तकनीक के सहारे आगे बढ़ रहा है, तब भारतीय किसान भी ड्रोन जैसी नवाचार तकनीक को अपनाकर आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में अपनी भूमिका निभा सकता है। ड्रोन तकनीक ने भारतीय कृषि को नई दिशा दी है। इससे फसल उत्पादन बढ़ा है, लागत घटी है, और किसानों की आय में वृद्धि की संभावनाएँ बढ़ी हैं। सही नीति, प्रशिक्षण और सहयोग से यह तकनीक भारत की कृषि क्रांति का नया अध्याय बन सकती है।

नन्दिनी इन्टरप्राइजेज खाद बीज एवं कीटनाशक

प्रो. रामदीन कुशवाह
84610-11860
हमारे यहां सभी प्रकार के खाद बीज एवं कीटनाशक दवाईयां उचित रेट पर मिलती हैं

पता : चीनोर रोड, छीमक, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
04/2025-26

✍ **दीपचंद निषाद** (शोध छात्र) सस्य विज्ञान विभाग वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर (उ.प्र.)

✍ **आदित्य भूषण श्रीवास्तव** कृषि अर्थशास्त्र विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज अयोध्या (उ.प्र.)

✍ **कार्तिकेय श्रीवास्तव** (शोध छात्र) जेनेटिक्स एंड प्लांट ब्रीडिंग विभाग, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर (उ.प्र.)

✍ **शिवम् श्रीवास्तव** (शोध छात्र) जेनेटिक्स एंड प्लांट ब्रीडिंग विभाग, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय अयोध्या (उ.प्र.)

✍ **संदीप कुमार** शोध छात्र, सस्य विज्ञान विभाग महाराजा सुहेल देव वि.वि. आज़मगढ़ (उ.प्र.)

मशरूम उत्पादन तकनीक

परिचय: बढ़ती मानव आबादी की मांग को पूरा करने और उसे खिलाने के लिए कृषि और संबद्ध क्षेत्रों के तेजी से विकास के परिणाम स्वरूप भारी मात्रा में (140 जीटी) बायोमास अपशिष्ट उत्पन्न होता है। इसी तरह, प्राकृतिक की ओर झुकाव बढ़ने के साथ, औषधीय और सुगंधित पौधों की खेती के तहत क्षेत्र में वृद्धि हुई है। इसके परिणामस्वरूप अकेले भारत में सालाना लगभग तीन मिलियन टन आसवन अपशिष्ट (आवश्यक तेल निकालने के बाद बचा हुआ पौधा पदार्थ) उत्पन्न होता है। इस आसवन अपशिष्ट का कोई आर्थिक मूल्य नहीं है और आम तौर पर इसे जला दिया जाता है, जिससे कई पर्यावरणीय समस्याएं पैदा होती हैं। सीएसआईआर-केंद्रीय औषधीय और सुगंधित पौधा संस्थान (सीएसआईआर-सीआईएमएपी) ने इन ठोस अपशिष्टों का उपयोग करने के लिए एक सरल तकनीक विकसित की है, जिसमें खाद्य मशरूम, पर्यावरण के अनुकूल कटलरी और वर्मीकम्पोस्ट के उत्पादन के लिए तेल रहित जड़ी-बूटियाँ शामिल हैं, न केवल इसके प्रभावी निपटान के लिए बल्कि अतिरिक्त आय के स्रोत के रूप में भी मशरूम उत्पादन तकनीक किसी भी कृषि प्रणाली में विविधता लाने से स्थिरता आती है। मशरूम एक ऐसा घटक है जो न केवल विविधता लाता है, बल्कि कुपोषण, गुणवत्तापूर्ण भोजन, स्वास्थ्य और पर्यावरण संबंधी समस्याओं को दूर करने में भी मदद करता है। प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ-साथ उत्पादकता बढ़ाने के लक्ष्य की दिशा में योगदान देने वाले प्रमुख क्षेत्रों में से एक कृषि-अपशिष्ट का पुनर्चक्रण है, जिसमें कृषि-औद्योगिक अपशिष्ट भी शामिल है। मशरूम उगाने के लिए इन अपशिष्टों का उपयोग आय बढ़ा सकता है और स्थिरता के उच्च स्तर प्रदान कर सकता है। मशरूम जीवन का एक सरल रूप है जिसे कवक के रूप में जाना जाता है। इसमें क्लोरोफिल की कमी होती है, इसलिए यह अपना भोजन स्वयं नहीं बना सकता है और अन्य जीवित या मृत पौधों और कार्बनिक पदार्थों पर निर्भर करता है। मशरूम अपनी स्वादिष्टता और खाद्य मूल्य के लिए लोकप्रिय हैं। यह अच्छी तरह से स्थापित तथ्य है कि वे विटामिन और खनिजों के उत्कृष्ट स्रोत हैं। उनका प्रोटीन जानवरों और सब्जियों के प्रोटीन के बीच का माना जाता है। ताजे मशरूम में लगभग 80-95% नमी, 4-37.5% प्रोटीन, 0.3-8.3% वसा और लगभग 1% खनिज और विटामिन होते हैं।

खेती के लिए उपयुक्त प्रकार के मशरूम: हालांकि मशरूम की कई प्रजातियाँ खाने योग्य हैं, लेकिन बहुत कम को कृत्रिम रूप से उगाया गया है। इनमें से सबसे लोकप्रिय हैं सफ़ेद बटन मशरूम (एगरिकस बाइस्पोरस) और ऑयस्टर मशरूम (प्लुरोटस स्पेसिग।) मशरूम अपनी तापमान आवश्यकता में अधिक विशिष्ट हैं, जो फसल के दौरान 14-20 डिग्री सेल्सियस के बीच होती है। बटन मशरूम को 20-33 डिग्री सेल्सियस के तापमान रेंज में भी उगाया जा सकता है।

मशरूम की खेती: पॉलीथीन, ईंट या पत्थर के घरों और प्राकृतिक संसाधनों से बनी झोपड़ियों का उपयोग करके कई मशरूम की खेती की जा सकती है।

आसवन अपशिष्ट को काटना: चैफ कटिंग मशीन का उपयोग करके डी-ऑइल जड़ी-बूटी को छोटे टुकड़ों (3-5 सेंमी) में काटा जाता है।

सब्सट्रेट की तैयारी: ऑयस्टर और बटन मशरूम को विभिन्न सब्सट्रेट जैसे कि गेहूं के भूसे, चावल के भूसे आदि पर उगाया जा सकता है। हमारी तकनीक "मेडिशनल एरोमेटिक प्लान्ट्स" के आसवन अपशिष्ट के उपयोग को बढ़ावा देती है, क्योंकि यह आसानी से उपलब्ध है और गेहूं के भूसे की तुलना में सस्ता है, जिसका व्यापक रूप से चारे के रूप में भी उपयोग किया जाता है।

कृषि अपशिष्ट और आसवन अपशिष्ट की संरचना

कृषि अपशिष्ट	संरचना
गेहूँ का भूसा	35-40% सेल्यूलोज, 13-15% लिग्निन, 35-39% हेमीसेल्यूलोज
चावल का भूसा	37-41% सेल्यूलोज, 12-14% लिग्निन, 28-32% हेमीसेल्यूलोज
गन्ने का खोई	35-40 सेल्यूलोज %, 18-24 लिग्निन %, 20-25%, हेमीसेल्यूलोज
आसवन अपशिष्ट (तेल रहित जड़ी-बूटी)	50-54% सेल्यूलोज, 15-18% लिग्निन और 21-24% हेमीसेल्यूलोज

पानी का छिड़काव: कटे हुए आसवन अपशिष्ट को हर दूसरे दिन ताजा पानी छिड़का जाता है, आसवन अपशिष्ट से अतिरिक्त पानी को 3-5 दिनों के लिए पॉलीथीन शीट पर फैलाकर निकाल दिया जाता है।

रासायनिक कीटाणुशोधन और पूर्व-अपघटन: अच्छी तरह से फैले आसवन अपशिष्ट पर 5% फॉर्मेल्डिहाइड घोल का छिड़काव किया जाता है और 30 दिनों के लिए पॉलीथीन शीट से ढक दिया जाता है।

स्पॉन उत्पादन: चयनित मशरूम प्रजातियों को शुरू में रात भर पानी में भिगोए गए गेहूं के दानों पर उगाया जा सकता है और बाद में 15 पाउंड दबाव पर 1 घंटे के लिए ऑटोक्लेव किया जा सकता है।

स्पॉनिंग (बीज बोना): स्पॉनिंग बेड या बेड में लेयर स्पॉनिंग के रूप में की जाती है। सब्सट्रेट को बेड में भरें, इसे 5 सेमी की ऊंचाई तक दबाएं, और इसके ऊपर मुट्ठी भर स्पॉन डालें। इसी तरह, सब्सट्रेट की दूसरी और तीसरी परतें डाली जाती हैं और साथ ही प्रत्येक परत का स्पॉनिंग किया जाता है। नमी बनाए रखने के लिए बेड को कागज या पॉलीथीन शीट से ढकना चाहिए। गेहूँ से उगाए गए एक किलोग्राम स्पॉन 100 किलोग्राम पूर्व-विघटित कटा हुआ आसवन अपशिष्ट के लिए पर्याप्त है स्पॉनिंग किए गए रैक और बेड को बंद संरचना में साफ-सुथरा रखना चाहिए। 20-25 डिग्री सेल्सियस का तापमान और आर्द्रता 70-85% तक, दीवारों और फर्श पर प्रतिदिन दो बार पानी का छिड़काव करके नमी बनाए रखना चाहिए। इसमें लगभग 15-20 दिन में क्यारियाँ पूरी तरह से सफ़ेद माइसीलियम से ढंक जाती हैं।

उत्पादन और कटाई: 10-15 दिनों के बाद, जब क्यारियों या बेड में सब्सट्रेट पूरी तरह से सफ़ेद माइसीलियम से भर जाता है, तो पिन हेड उगना शुरू हो जाता है। इस अवस्था में, फलने वाले को ठीक से पोषण देने के लिए वर्मीकम्पोस्ट की परत चढ़ाना आवश्यक है। मशरूम 20-30 डिग्री सेल्सियस के तापमान पर उगते हैं। जैसे ही छोटे पिनहेड दिखाई देते हैं, पानी का हल्का छिड़काव किया जाता है। जब पिनहेड 2-3 सेमी आकार के हो जाते हैं, तो क्यारियों या बेड पर बार-बार पानी का छिड़काव किया जाना चाहिए। कटाई से 2-3 दिन पहले क्यारियों में पानी का छिड़काव बंद कर देना चाहिए ताकि वे बढ़ सकें। गुणवत्ता बनाए रखने के लिए मशरूम को बीजाणु छोड़ने से पहले ही तोड़ लेना चाहिए। फसल की पहली तुड़ाई के बाद, 0.5 से 1 सेमी बाहरी बेड की परत को हटा देना चाहिए। इससे दूसरी तुड़ाई शुरू करने में मदद मिलती है, जो लगभग 10 दिनों के बाद दिखाई देती है। कटाई के बाद, डंठल के निचले हिस्से को सूखे कपड़े से साफ करना चाहिए। उन्हें ताजा रखने के लिए, उन्हें छिद्रित (5-6 छोटे छेद) पॉलीथीन बैग में पैक किया जाना चाहिए। वे लगभग 6 घंटे के बाद ताज़गी खो देते हैं।

बटन और ऑयस्टर मशरूम की उपज और पोषक मूल्य (सूखा वजन के आधार पर ग्राम/100 ग्राम)

मशरूम	उपज (किग्रा/सब्सट्रेट का)	कार्बोहाइड्रेट (%)	वसा (%)	प्रोटीन (%)	ऊर्जा (कैलोरी)	विटामिन-डी (µg)
बटन मशरूम	0.51	47.33	3.17	33.62	417.50	617.00
ऑयस्टर मशरूम	0.48	52.33	0.67	25.62	317.50	617.00

याद रखने योग्य बातें

1. आस-पास के क्षेत्रों को साफ-सुथरा रखें। मक्खियों को रोकने के लिए दरवाजों पर महीन तार की जाली/छाया जाल लगाएं।
2. फसल कक्षों में जहां अलमारियों/बिस्तरों को डी-ऑइल अपशिष्ट से भरा जाता है और स्पॉन रन के लिए रखा जाता है, फॉर्मेल्डिहाइड घोल (50 मिली/लीटर पानी या 5%) को कमरे/झोपड़ी के किनारों पर स्पॉनिंग से 48 घंटे पहले छिड़का जाना चाहिए ताकि यह सड़न रोकने वाला हो जाए।
3. यदि कोई खरपतवार या फफूंद दिखाई दे तो उस स्थान को फॉर्मेल्डिहाइड घोल (4%) में भिगोए हुए रुई से उपचारित करें।
4. फसल खत्म होने के बाद, बचे हुए सब्सट्रेट का उपयोग वर्मीकंपोस्टिंग के लिए किया जा सकता है।
5. फसल के दौरान, ताजी हवा की आवश्यकता होती है। इसलिए, फसल कक्षों में उचित वेंटिलेशन प्रदान किया जाना चाहिए।

चने की फसल को रोगों से बचाना: आधुनिक पहचान एवं प्रभावी प्रबंधन रणनीतियां

शुभम एम.एससी (एग्रीकल्चर) पादप रोग विज्ञान, कृषि विज्ञान विद्यालय, आईआईएमटी विश्वविद्यालय मेरठ

हरीश कुमार एवं ज्योति सहायक प्रोफेसर कृषि विज्ञान विद्यालय, आईआईएमटी विश्वविद्यालय मेरठ (उ.प्र.)

संक्षेप

चने की फसल में लगने वाले प्रमुख रोगों की पहचान, उनके कारण, लक्षण और उनके एकीकृत प्रबंधन (IPM) की जानकारी इस लेख में दी गई है। यह लेख किसानों को रोगों से होने वाले नुकसान को कम करने और स्वस्थ फसल उत्पादन में मदद करेगा।

प्रस्तावना

चना भारतीय कृषि-अर्थव्यवस्था एवं पोषण सुरक्षा की दृष्टि से एक अत्यंत महत्वपूर्ण दलहनी फसल है। यह न केवल प्रोटीन का एक सस्ता, सुलभ एवं प्रमुख स्रोत है, बल्कि मृदा की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने में भी इसकी भूमिका अग्रणी है। देश में इसकी खेती प्रमुख रूप से रबी के मौसम में की जाती है। हालाँकि, विभिन्न प्रकार के रोगजनकों, जैसे कि फफूंद, बैक्टीरिया एवं विषाणुओं के कारण उत्पन्न होने वाले रोग, चने की फसल की पैदावार एवं गुणवत्ता को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं। इन रोगों के प्रकोप से फसल को 10% से लेकर 100% तक की भारी क्षति होने का जोखिम बना रहता है, जिससे किसानों की आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः, इन रोगों का सटीक एवं समय पर पहचान करना तथा उनका प्रभावी वैज्ञानिक प्रबंधन करना, चने की स्थिर एवं लाभकारी उपज सुनिश्चित करने के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता है। यह प्रस्तावना इसी संदर्भ में रोग प्रबंधन के महत्व को रेखांकित करती है।

रोग का नाम, कारक जीव और लक्षण

चने की फसल को प्रभावित करने वाले प्रमुख रोग निम्नलिखित हैं:

रोग का नाम	कारक जीव	लक्षण
उकठा रोग/विल्ट	फ्यूसेरियम ऑक्सीस्पोरम एफ. एस.पी. सिसेरी (कवक)	पौधे का अचानक सूखना: यह रोग पौधे की किसी भी अवस्था में हो सकता है। शुरुआती अवस्था में, पत्तियाँ पीली पड़कर नीचे की ओर झुक जाती हैं और पूरा पौधा अचानक सूख जाता है। यदि तने को चीरा जाए, तो जाइलम में भूरा या कालापन दिखाई देता है।
झुलसा रोग/एस्कोकाईटा ब्लाइट	एस्कोकाईटा रैबीई (कवक)	पत्तियों, तनों और फलियों पर धब्बे: पत्तियों, तनों और फलियों पर भूरे रंग के गोल या अंडाकार धब्बे दिखाई देते हैं, जिनके किनारे गहरे और बीच का भाग हल्का होता है। धब्बों के बीच में काले बिंदु (पिक्निडिया) दिखाई देते हैं। गंभीर संक्रमण में, तना टूट जाता है और पूरा पौधा झुलसा हुआ दिखाई देता है।
ग्रे मोल्ड/ बोट्राइटिस ग्रे मोल्ड	बोट्राइटिस सिनेरिया (कवक)	फफूंदी का विकास: यह रोग आमतौर पर फूल आने और फली बनने के समय ठंडे और नम मौसम में होता है। पत्तियों, फूलों और फलियों पर भूरे रंग के धब्बे बनते हैं, जो बाद में भूरे-सफेद रंग की फफूंदी (ग्रे मोल्ड) से ढक जाते हैं। यह रोग तने को भी संक्रमित करता है, जिससे तना गल जाता है।
शुष्क जड़ गलन/ड्राई रूट रॉट	राइजोक्टोनिया बटाटिकोला (कवक)	जड़ का सड़ना: यह रोग आमतौर पर फसल की परिपक्वता अवस्था में या सूखे की स्थिति में होता है। पत्तियाँ पीली पड़कर नीचे की ओर झुक जाती हैं। जड़ें सूखी और भूरे रंग की हो जाती हैं, और तने के निचले हिस्से पर छोटे, काले, गोलाकार स्क्लेरोशिया दिखाई दे सकते हैं।
स्टंट रोग	चना स्टंट वायरस (विषाणु)	पौधे का बौनापन: संक्रमित पौधे छोटे और झाड़ीनुमा रह जाते हैं। पत्तियाँ पीली या लाल-बैंगनी रंग की हो जाती हैं। फलियाँ कम बनती हैं या बिल्कुल नहीं बनती हैं। यह रोग एफिड्स द्वारा फैलता है।

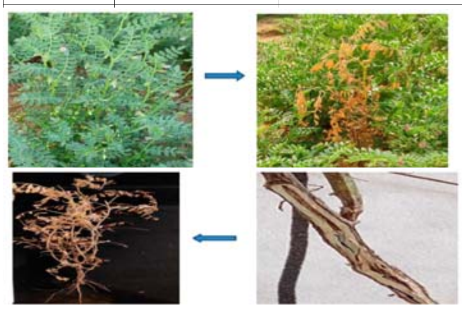

एकीकृत प्रबंधन

चने के रोगों के प्रभावी नियंत्रण के लिए एकीकृत कीट एवं रोग प्रबंधन (IPM) को अपनाना चाहिए, जिसमें निम्नलिखित उपाय शामिल हैं:

कृषिगत प्रबंधन

फसल चक्र: उकठा रोग और जड़ गलन को नियंत्रित करने हेतु 2-3 साल का फसल चक्र अपनाना चाहिए।

गहरी जुताई: गर्मियों में गहरी जुताई करने से रोगजनक कवक के स्क्लेरोशिया नष्ट हो जाते हैं।

बुवाई का समय: उकठा रोग से बचने के लिए बुवाई समय पर (अक्टूबर के अंतिम सप्ताह से नवंबर के पहले सप्ताह) करनी चाहिए।

पौधों का घनत्व: बोट्राइटिस ग्रे मोल्ड के जोखिम को कम करने के लिए पौधों के बीच उचित दूरी बनाए रखें ताकि हवा का संचार बना रहे।

जैविक प्रबंधन

बीज उपचार: बुवाई से पहले बीजों को ट्राइकोडर्मा विरिडी (4 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज) या स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस (10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज) से उपचारित करें। यह उकठा और जड़ गलन रोगों के लिए बहुत प्रभावी है।

रासायनिक प्रबंधन

बीज उपचार: उकठा और झुलसा रोग के लिए, बुवाई से पहले बीजों को कार्बेन्डाजिम (Carbendazim) 12% + मैनकोजेब (Mancozeb) 63% WP (2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज) या थायरम (Thiram) (2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज) से उपचारित करें।

* **फफूंदीनाशक का छिड़काव:** झुलसा रोग और ग्रे मोल्ड के लक्षण दिखाई देने पर मैनकोजेब (Mancozeb) (2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी) या क्लोरोथालोनिल (Chlorothalonil) (2 ग्राम प्रति लीटर पानी) का छिड़काव 10-15 दिनों के अंतराल पर करें।

स्टंट रोग: यह विषाणु जनित रोग है, जिसका कोई सीधा रासायनिक उपचार नहीं है। इसके वाहक (एफिड्स) को नियंत्रित करने के लिए इमिडाक्लोप्रिड (Imidacloprid) जैसे कीटनाशक का छिड़काव करें।

प्रतिरोधी किस्में: * रोगों के प्रबंधन का सबसे प्रभावी तरीका प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग करना है। किसान अपने क्षेत्र के लिए अनुशंसित उकठा रोग प्रतिरोधी किस्में (जैसे: अवरोधी, जेजी-11, जेजी-130) और झुलसा रोग प्रतिरोधी किस्में (जैसे: जी-24, गौरव) का चयन करें।

निष्कर्ष: चने की फसल में रोगों का एकीकृत प्रबंधन (IPM) अपनाकर किसान अपनी फसल को सुरक्षित रख सकते हैं और अधिकतम उपज प्राप्त कर सकते हैं। रोग की सही पहचान, प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग, बीज उपचार और समय पर रासायनिक नियंत्रण, ये सभी उपाय मिलकर चने की खेती को अधिक लाभदायक बना सकते हैं।

01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

गैर-पारंपरिक चारा स्रोतः पशुधन पोषण में एक नई पहल

आकृति झा, सुधीर कुमार राजपूत
अंबिकेश त्रिपाठी
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

पशुपालन भारतीय कृषि व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग है, जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था, पोषण सुरक्षा तथा कृषकों की आय में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। परंतु बढ़ती जनसंख्या, सीमित कृषि भूमि, जलवायु परिवर्तन तथा परंपरागत चारा फसलों की कमी के कारण पशुओं के लिए गुणवत्तापूर्ण चारे की उपलब्धता एक गंभीर समस्या बनती जा रही है। ऐसी स्थिति में पशुओं की पोषण आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु गैर-पारंपरिक चारा स्रोतों (Non-conventional fodder sources) का महत्व तेजी से बढ़ रहा है।

गैर-पारंपरिक चारा स्रोत वे पौधे, जैव संसाधन एवं कृषि-औद्योगिक उप-उत्पाद हैं, जिन्हें सामान्यतः पारंपरिक हरा या सूखा चारा नहीं माना जाता, किंतु उचित प्रसंस्करण एवं प्रबंधन के पश्चात इन्हें पशु आहार के रूप में सफलतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है। इनमें अजोला, काँटारहित कैक्टस जलकुंभी, पेड़-पौधों की पत्तियाँ, कृषि अवशेष, फल-सब्जी उद्योग के अपशिष्ट, ब्रेवरी व शुगर मिल उप-उत्पाद आदि शामिल हैं। ये स्रोत प्रायः स्थानीय रूप से उपलब्ध, कम लागत वाले तथा पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं। गैर-पारंपरिक चारा स्रोतों का उपयोग न केवल चारा संकट को कम करने में सहायक है, बल्कि यह पशु उत्पादन क्षमता बढ़ाने, चारा लागत घटाने तथा पर्यावरण संरक्षण में भी योगदान देता है। विशेष रूप से शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में, जहाँ पारंपरिक चारा उत्पादन सीमित होता है, वहाँ इन स्रोतों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। अतः वर्तमान परिदृश्य में सतत पशुपालन एवं खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु गैर-पारंपरिक चारा स्रोतों का समुचित उपयोग एवं प्रचार-प्रसार अत्यंत आवश्यक है। सामान्य रूप से उपयोग में लाए जाने वाले चारा फसलों जैसे चरागाह एवं स्थायी घास भूमि की घासें तथा दलहनी फसलों के अतिरिक्त, कुछ अन्य गैर-परंपरागत चारा स्रोत भी वर्तमान में पशुपालकों के बीच तेजी से लोकप्रिय हो रहे हैं। इनमें से कुछ प्रमुख स्रोतों का विवरण निम्नलिखित है।

अजोला-अजोला एक छोटी तैरने वाली जल फर्न है। अजोला वंश में जलीय फर्न की सात प्रजातियाँ पाई जाती हैं। इसका नीली-हरी शैवाल एनाबेना अजोली के साथ सहजीवी संबंध होता है, जो वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर कर आत्मसात करती है। इसकी आसान खेती, उच्च पोषण मूल्य तथा अधिक जैवभार उत्पादन के कारण यह पशुपालकों में लोकप्रिय हो रही है। अजोला प्रोटीन का अच्छा स्रोत है और इसमें लगभग सभी आवश्यक अमीनो अम्ल, खनिज तत्व, व-कैरोटीन (विटामिन A का पूर्वरूप) तथा विटामिन B12 पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। शुष्क भार के आधार पर अजोला में लगभग 75% कार्बनिक पदार्थ, 25% प्रोटीन, 15% कच्चा रेशा तथा 10% अमीनो अम्ल होते हैं। दुध पशुओं के आहार में अजोला को 15-20% तक सांद्र चारे के विकल्प के रूप में शामिल किया जा सकता है।

मुख्य लाभ

उच्च प्रोटीन मात्राः इसमें 25-35% प्रोटीन होता है, जो इसे उत्कृष्ट पूरक चारा बनाता है।

खनिज एवं विटामिन से भरपूरः आवश्यक अमीनो अम्ल, विटामिन (A, B12) तथा कैल्शियम और आयरन जैसे खनिज प्रदान करता है।

दुग्ध उत्पादन में वृद्धिः दुग्ध पशुओं में दूध उत्पादन बढ़ाने में सहायक।

तीव्र वृद्धि एवं कम लागतः जल सतह पर तेजी से बढ़ता है, जिससे चारा लागत कम होती है।

काँटारहित कैक्टस (Thornless cactus)- काँटारहित कैक्टस (Opuntia ficus-indica), जिसे चारा कैक्टस भी कहा जाता है, शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों के लिए एक संभावित चारा स्रोत है। यह कम एवं अनियमित वर्षा, बार-बार सूखा पड़ने तथा खराब मृदा वाली परिस्थितियों में भी अच्छी तरह उगता है। यह CAM (क्रैसुलेशियन अम्ल चयापचय) पौधा होने के कारण उच्च जल उपयोग दक्षता रखता है। कैक्टस चारा विटामिन A तथा जल में घुलनशील कार्बोहाइड्रेट से भरपूर होता है और लगभग 70% शुष्क पदार्थ पाचनशीलता रखता है। 6 माह पुराने बड़े, मांसल क्लैडोड काटकर 2-3 इंच के टुकड़ों में काटकर पशुओं को खिलाए जाते हैं। प्रतिदिन लगभग 10-15 किलोग्राम कटा हुआ कैक्टस सूखे चारे के साथ मिलाकर खिलाया जा सकता है। इसे छोटे जुगाली पशु एवं गाय-बैलों दोनों द्वारा अच्छी तरह स्वीकार किया जाता है।

मुख्य लाभ

सूखा सहनशीलः न्यूनतम जल में भी अच्छी वृद्धि।

उच्च जल मात्राः इसमें 85-90% पानी होता है, जो पशुओं में जल संतुलन बनाए रखता है।

रेशा एवं ऊर्जा से भरपूरः पाचन में सुधार और ऊर्जा प्रदान करता है।

खिलाने में आसानः काँटों के अभाव में पशुओं के लिए सुरक्षित।

काँटारहित कैक्टस

चारा चुकंदर (Fodder beet)

चारा चुकंदर (Beta vulgaris) उच्च उपज देने वाली चारा फसलों में से एक है तथा नवीकरणीय ऊर्जा का अच्छा स्रोत है। यह फसल लगभग 4 महीनों में 150 से 200 टन प्रति हे. से अधिक हरा चारा (जड़ + पत्तियाँ) देने की क्षमता रखती है। इसकी जल उपयोग दक्षता बहुत अधिक होती है। इसकी जड़ों में 4-6% कच्चा प्रोटीन पाया जाता है।

मुख्य लाभ

उच्च ऊर्जा युक्त चाराः कार्बोहाइड्रेट से भरपूर, तुरंत ऊर्जा प्रदान करता है।

दुग्ध उत्पादन में वृद्धिः दुग्ध पशुओं के लिए लाभकारी।

उत्तम स्वादः मीठे स्वाद के कारण पशु इसे पसंद करते हैं।

पाचन में सहायकः उच्च रेशा मात्रा पाचन क्रिया को बेहतर बनाती है।

मोरिंगा/ सहजन (Moringa)-मोरिंगा (Moringa oleifera), जिसे सहजन या मुनगा भी कहा जाता है, एक बहुउद्देशीय वृक्ष है जिसका उपयोग भोजन, औषधि, औद्योगिक तथा चारा प्रयोजनों के लिए किया जाता है। यह एक बहुवर्षीय वृक्ष है और वर्ष भर उच्च गुणवत्ता का हरा चारा प्रदान करने की क्षमता रखता है। 4-5 कटाई में यह 70-100 टन प्रति हेक्टेयर तक हरा चारा दे सकता है। मोरिंगा चारा दुग्ध पशुओं के लिए अत्यंत पौष्टिक है। यह तेजी से बढ़ने वाला, गहरी जड़ वाला तथा सूखा सहनशील पौधा है। इसमें लगभग 16-20% प्रोटीन (ताजा पत्तियों में 12-14%) तथा प्रचुर मात्रा में खनिज एवं विटामिन पाए जाते हैं।

मुख्य लाभ

* **पशुओं के लिए सुपरफूडः** 25-30% प्रोटीन, आवश्यक विटामिन एवं खनिज से भरपूर।

* **रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता हैः** एंटीऑक्सीडेंट एवं जैव सक्रिय यौगिकों से समृद्ध।

* **वृद्धि एवं उत्पादन में सुधारः** वजन वृद्धि और दुग्ध उत्पादन बढ़ाता है।

* **तेजी से बढ़ने वाला एवं कम स्थान की आवश्यकताः** एक टिकाऊ चारा विकल्प।

गन्ने की पत्ती/ऊपरी भाग (Sugarcane top)- गन्ने की ऊपरी पत्तियाँ गन्ना फसल का एक प्रमुख उप-उत्पाद हैं। इसमें हरी पत्तियाँ, पत्ती आवरण तथा कुछ मात्रा में अपरिपक्व गन्ना शामिल होता है। गन्ना उत्पादक क्षेत्रों में इसे व्यापक रूप से पशुओं को खिलाया जाता है। यह ऊर्जा से भरपूर होता है, किंतु इसमें कच्चे प्रोटीन की मात्रा कम होती है।

मुख्य लाभ

* **उच्च ऊर्जा सामग्रीः** घुलनशील शर्करा के कारण ऊर्जा प्रदान करता है।

* **सस्ता एवं आसानी से उपलब्धः** गन्ना कटाई का उप-उत्पाद होने के कारण कम लागत।

* **जठर क्रिया में सुधारः** अन्य चारे के साथ मिलाने पर पाचन बेहतर करता है।

* **चारा उपयोग दक्षता बढ़ाता हैः** प्रोटीन युक्त चारे के साथ देने पर अधिक लाभकारी।

हाइड्रोपोनिक चारा उत्पादन -देश में चारे की मौसमी एवं क्षेत्रीय कमी को ध्यान में रखते हुए, मिट्टी रहित चारा उत्पादन तकनीक के रूप में हाइड्रोपोनिक्स तेजी से लोकप्रिय हो रही है। इससे वर्ष भर चारा उपलब्ध कराया जा सकता है। यह चारा अत्यंत रसीला होता है और पशुओं द्वारा बहुत पसंद किया जाता है। 11-13 दिनों के भीतर पौष्टिक हरा चारा तैयार हो जाता है, जो कार्बोहाइड्रेट, खनिज एवं विटामिन से भरपूर होता है। यह प्रणाली अत्यधिक जल उपयोग दक्ष है और वर्ष भर हरा चारा उपलब्ध करा सकती है। तीन स्थानों पर किए गए एक परीक्षण में 300 ग्राम प्रति वर्ग फुट बीज दर अधिक उपयुक्त पाई गई, जिससे 4.2-5.8 किलोग्राम हरा चारा प्राप्त हुआ, जिसमें 8.7-9% शुष्क पदार्थ तथा 11-15% कच्चा प्रोटीन पाया गया।

निष्कर्षः गैर-पारंपरिक चारा स्रोत पशुपालन क्षेत्र में चारा कमी की समस्या के समाधान हेतु एक प्रभावी, किफायती एवं सतत विकल्प के रूप में उभर कर सामने आए हैं। ये स्रोत स्थानीय स्तर पर आसानी से उपलब्ध होते हैं तथा कृषि अपशिष्ट, औद्योगिक उप-उत्पाद, जलीय पौधों एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कर चारे की निरंतर आपूर्ति सुनिश्चित करते हैं। उचित प्रसंस्करण एवं संतुलित उपयोग के माध्यम से इन चारा स्रोतों से पशुओं की पोषण आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है, जिससे दूध, मांस एवं अन्य पशु उत्पादों की उत्पादकता में वृद्धि संभव है। साथ ही, गैर-पारंपरिक चारा स्रोतों का उपयोग पर्यावरण संरक्षण, अपशिष्ट प्रबंधन एवं उत्पादन लागत में कमी लाने में भी सहायक सिद्ध होता है। अतः किसानों में इनके प्रति जागरूकता बढ़ाकर, वैज्ञानिक पद्धतियों के अनुसार उपयोग को प्रोत्साहित करना आवश्यक है, जिससे पशुपालन को अधिक लाभकारी, टिकाऊ एवं संसाधन-सक्षम बनाया जा सके।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

करेला की वैज्ञानिक एवं उन्नत खेती

शशि शेखर मिश्रा, राहुल यादव (शोध छात्र)
सब्जी विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

आस्तिक झा सहायक प्राध्यापक, सब्ज़ी विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उत्तर प्रदेश

करेला अपने विशेष औषधीय गुणों के कारण अन्य सब्जियों की अपेक्षा अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसकी खेती भारतवर्ष में खरीफ एवं ग्रीष्म दोनों ही ऋतुओं में की जाती है। सब्जियों की पैदावार में इसका विशेष स्थान है। इसके फलों का उपयोग सब्जी, कलौंजी व अचार बनाने में आते हैं। इसके फलों को काटकर चिप्स के रूप में सुखा लेते हैं और बाद में सब्जी के रूप में प्रयोग करते हैं। इसके फल का प्रयोग पेट की बीमारी से ग्रसित रोगियों के लिये लाभदायक है। करेले के कच्चे फलों का रस मधुमेह के रोगियों के लिये भी बहुत उपयोगी है और उच्च रक्तचाप के मरीजों के लिये बहुत लाभदायक होता है।

जलवायु -

भूमि का चुनाव एवं तैयारी- सामान्यतः करेले की खेती सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है। परन्तु जीवांश से भरपूर दोमट मिट्टी या बलुई दोमट मिट्टी इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम होती है। जिस मिट्टी का पीएच मान 5.5 से नीचे हो जाता है, इसकी खेती करना मुश्किल हो जाता है। कम उर्वरा मृदा में इसकी उपज काफी घट जाती है। खेत में जल निकास अच्छी प्रकार से होना चाहिए। खेत की तैयारी के लिए पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा बाद में 2-3 जुताई देशी हल से करना चाहिए। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा चलाकर मिट्टी को भर-भुरी एवं खेत को समतल कर लेना चाहिए।

प्रजातियाँ / संकर किस्में- करेले की प्रजातियों को सामान्यतः दो भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम वर्ग में छोटे आकार वाली (10 सेंमी. तक) प्रजातियाँ, जो प्रायः ग्रीष्म ऋतु में उगाई जाती हैं। द्वितीय वर्ग में बड़े आकार वाली (10 सेंमी. से ज्यादा लम्बी) प्रजातियाँ जो प्रायः वर्षा में उगाई जाती हैं। करेले की प्रचलित प्रजातियाँ निम्नलिखित हैं-

कल्याणपुर सोना- यह किस्म चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर द्वारा विकसित की गई है। इस किस्म के पौधों की लतायें मध्यम लम्बी होती हैं। यह किस्म उत्तर प्रदेश के लिये अनुमोदित की गई है। इसकी उत्पादन क्षमता 120-130 कुन्तल / हेक्टेयर है।

फुले प्रियंका- यह किस्म महात्मा फुले कृषि विश्वविद्यालय, राहुरी द्वारा विकसित की गई है जिसे केन्द्रीय प्रजाति अनुमोदन समिति द्वारा सन् 2001 में चिन्हित किया गया है। इस किस्म के फल मध्यम लम्बे एवं गहरे हरे रंग के होते हैं। इस किस्म के पौधे मृदु रोमिल आसिता रोग के प्रति सहनशील होते हैं। इस किस्म की उत्पादन क्षमता 200-250 कुन्तल / हेक्टेयर है।

फुले ग्रीन गोल्ड- यह किस्म महात्मा फुले कृषि विश्वविद्यालय, राहुरी द्वारा विकसित की गई है जिसे केन्द्रीय प्रजाति अनुमोदन समिति द्वारा सन् 2001 में चिन्हित किया गया है। इस किस्म के फल गहरे हरे रंग के जिनकी लम्बाई 25-30 सेमी0 लम्बे होते हैं। इस किस्म के पौधे मृदु रोमिल आसिता रोग के प्रति सहनशील होते हैं जो महाराष्ट्र राज्य में खेती के लिये अनुमोदित की गई है। इस किस्म की उत्पादन क्षमता 220-235 कुन्तल / हेक्टेयर है।

कोंकण तारा (डीपीएलबीजी-2) - यह किस्म कोंकण कृषि विद्यापीठ, महाराष्ट्र द्वारा विकसित की गई है जिसे केन्द्रीय प्रजाति अनुमोदन समिति द्वारा सन् 1996 में चिन्हित किया गया है। इस किस्म के फल हरे, मध्यम लम्बे (15-16 सेमी0) होते हैं। फलों की भण्डारण क्षमता 7-8 दिन सामान्य तापक्रम पर होती है। यह किस्म महाराष्ट्र के कोंकण जिले में खेती के लिये अनुमोदित की गई है। इस किस्म की उत्पादन क्षमता 230-250 कुन्तल / हेक्टेयर है।

पंत करेला-2 (पीबीआईजी-1) -यह किस्म पंतनगर कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर द्वारा विकसित की गई है जिसे केन्द्रीय प्रजाति अनुमोदन समिति द्वारा सन् 2006 में चिन्हित किया गया है। इस किस्म के फल पतले तथा 25 सेमी0 लम्बे होते हैं। यह किस्म उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, बिहार तथा छत्तीसगढ़ राज्यों में खेती के लिये अनुमोदित की गई है। इस किस्म की उत्पादन क्षमता 150-100 कुन्तल / हेक्टेयर है।

पूसा हाइब्रिड-2 -यह संकर किस्म पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, हरियाणा तथा दिल्ली जैसे राज्यों में खेती के लिये अनुमोदित किया गया है। इस किस्म की उत्पादन क्षमता 190-200 कुन्तल / हेक्टेयर है।

पूसा दो मौसमी -यह प्रजाति भारतीय कृषि अनुसंधान, नई दिल्ली द्वारा विकसित की गई है। बुवाई के लगभग 65 दिनों बाद फल तुड़ाई योग्य हो जाते हैं। इसके फल गहरे हरे रंग के, मध्यम छोटे, 7-8 धारियों वाले तथा 18 सेमी0 लम्बे होते हैं। औसतन 8-10 फल का वजन 1 किग्रा0 होता है। नाम के अनुसार यह किस्म दोनों मौसमों (खरीफ व जायद) में बोई जाती है। इस किस्म की औसत उपज 100 कुन्तल / हेक्टेयर है।

पूसा विशेष- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकसित करेले की उत्तम प्रजाति है। इस किस्म के पौधों की बेलें कम बढ़ने वाली होती हैं जिससे प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक पौधों को लगाया जा सकता है। इसके फल मुलायम, हरे पतले, मध्यम आकार तथा खाने में स्वादिष्ट होते हैं। एक फल का औसतन वजन 115 ग्राम होता है। इस किस्म की औसत उपज 124-196 कुन्तल / हेक्टेयर होती है।

अर्का हरित- यह प्रजाति भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बंगलौर से चयन पद्धति द्वारा विकसित की गई है। इस प्रजाति के फल छोटे तकुर्वेनुमा, चमकीले, हरे तथा आकर्षक होते हैं जिन पर चिकनी धारियाँ होती हैं। फल मोटे छिलके वाले, अधिक गूदेदार तथा कम बीज वाले होते हैं। फलों में कड़ुवापन भी कम होता है। इसकी उपज 120-130 कुन्तल/हे. होती है।

कोयम्बटूर लाँग -यह किस्म तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयम्बटूर द्वारा चयनित की गई है। इसके फल लम्बे, मुलायम, सफेद व वर्षा ऋतु की बुवाई के लिये उपयुक्त होते हैं। उपज औसतन 125 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है।

प्रिया (वीके-1) -यह किस्म केरल कृषि विश्वविद्यालय, वेल्लनिकारा (त्रिशूर) केरल से चयन विधि द्वारा विकसित की गई है। इसके फल 40 सेमी0 तक लम्बे होते हैं और प्रत्येक फल का वजन 200 ग्राम होता है। फलों का रंग हल्का हरा होता है। इस किस्म को दक्षिण भारत के क्षेत्रों में मई-सितम्बर, फरवरी-मार्च और सितम्बर-जनवरी के समय उगाया जा सकता है। पहली तुड़ाई 60 दिनों में हो जाती है। यह प्रजाति अच्छी उपज (200 कुन्तल / हेक्टेयर) देने वाली है।

पंजाब-14- यह प्रजाति पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना द्वारा स्थानीय जनन द्रव्यों से चयन करके विकसित की गई है। इसके फल रोपण के 45 दिनों में खाने योग्य हो जाते हैं। इसके फलों का रंग हल्का हरा तथा औसत भार 350 ग्राम प्रतिफल होता है। इस प्रजाति की औसत उपज 125 कुन्तल / हेक्टेयर होती है। इसको गर्मी एवं बरसात दोनों मौसमों में उगाया जा सकता है।

कल्याणपुर बारहमासी - यह प्रजाति सब्जी अनुसंधान केंद्र कल्याणपुर, कानपुर द्वारा विकसित की गई है। इसकी बेलें गहरे हरे रंग की होती हैं। इस किस्म के फल 20-25 सेमी0 लम्बे, हल्के हरे, पतले, किनारों पर चपटे और नुकीले होते हैं। प्रत्येक फल में 8-10 बीज बनते हैं। इस किस्म पर फल मक्खी और मोजैक का प्रकोप कम होता है। बीज बुवाई के 65 दिनों बाद फल तुड़ाई योग्य हो जाते हैं। इस किस्म की उत्पादन क्षमता 100-125 कुन्तल / हे. है। नाम के अनुसार इसकी बेलें पूरे वर्ष हरी बनी रहती हैं और कुछ न कुछ फलियाँ आती रहती हैं।

चमन - नन्हेम्स कम्पनी द्वारा विकसित की गई संकर किस्म है। इसके फलों की लम्बाई 15 से 16 सेंमी. तक की होती है। इसके फलों का औसत वजन 120-130 ग्राम तक का होता है।

जुही - इस संकर किस्म का भी विकास नन्हेम्स द्वारा किया गया है। इसकी पहली तुड़ाई 45 दिन बाद शुरू हो जाती है। इसके फलों की लम्बाई 20-22 सेमी0 तक होती है एवं फलों का औसत वजन 200-250 ग्राम होता है।

सरकार एफ-1-यह नन्हेम्स द्वारा विकसित संकर प्रजाति है। इसके फल लम्बे (20-24 सेमी.) एवं गहरे हरे रंग के होते हैं। इस प्रजाति की पहली तुड़ाई 56-58 दिनों में शुरू हो जाती है। इसके फलों का औसत वजन 100-110 ग्राम होता है।

नूरी प्लस- यह भी नन्हेम्स द्वारा विकसित संकर प्रजाति है। जिसकी पहली तुड़ाई 45 दिन में शुरू हो जाती है। इसके फलों की लम्बाई 22-25 सेमी0 एवं प्रति फल औसत वजन 250 से 300 ग्राम तक होता है।

मिडोरी शार्ट- यह टोकिटा द्वारा विकसित संकर प्रजाति है। जिसके पौधे मध्यम आकार के होते हैं। इसके फलों की औसत लम्बाई 12-13 सेंमी. होती है। बुवाई के 60 दिनों बाद इसकी पहली तुड़ाई शुरू हो जाती है। इसके फलों का औसत वजन 75 ग्राम होता है।

शिरोकवन- इस प्रजाति को भी टोकिटा द्वारा विकसित किया गया है। इसके फल चमकदार सफेद होते हैं। फलों की औसत लम्बाई 14-15 सेमी. होती है। इसकी पहली तुड़ाई बुवाई के 60 दिनों बाद शुरू होती है।

मिडोरी लांग-यह टोकिटा द्वारा विकसित संकर प्रजाति है। इसके फलों की औसत लंबाई 18 सेंमी. एवं वजन 100 ग्राम तक का होता है।

बीज की मात्रा- एक हेक्टेयर खेत में बुवाई के लिये 85-85ः अंकुरण क्षमता वाले 5-6 किग्रा. बीज की आवश्यकता पड़ती है।

बीज शोधन- एक स्थान पर 2-3 बीज 3-4 सेमी0 की गहराई पर बोना चाहिये। नदियों के किनारे बीजों की बुवाई थालों पर की जाती है। इस विधि में 2 मीटर की दूरी पर थाले बनाये जाते हैं। इन थालों में अच्छी प्रकार से सड़ी हुई गोबर की खाद एवं नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश की आपूर्ति क्रमशः यूरिया, सिंगल सुपर फास्फेट एवं पोटेशियम क्लोराइड (20, 40 और 40 ग्राम) द्वारा करनी चाहिये। इसके अलावा प्रत्येक थाले में नीम की खली 100 ग्राम देना लाभप्रद होता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

'कृषि में बायोमल्चिंग : प्लास्टिक का हरित विकल्प'

प्रखर राय (एमएससी छात्र) सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय

डॉ. ललित कुमार सनोदिया

डॉ. अखिलेश कुमार सिंह

सहायक प्रोफेसर ,कृषि विज्ञान संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

परिचय: कृषि में मल्चिंग का इस्तेमाल काफी पुराना तरीका है, जो किसानों को अपनी जमीन की नमी बचाने, खरपतवार कम करने और फसल की उपज बढ़ाने में मदद करता है। आजकल ज्यादातर किसान प्लास्टिक मल्चिंग का उपयोग करते हैं क्योंकि यह सस्ता और आसान तरीका माना जाता है। लेकिन प्लास्टिक के उपयोग से हमारे खेतों की मिट्टी और आसपास की प्रकृति को भारी नुकसान हो रहा है। प्लास्टिक मिट्टी में रह-रहकर जमा होता रहता है, जिससे जमीन की सेहत बिगड़ती है और यह प्रदूषण भी फैलाता है।

इसी समस्या को ध्यान में रखते हुए, आज बायोमल्चिंग जैसे हरित और पर्यावरण-हितैषी विकल्पों पर ज़ोर दिया जा रहा है। बायोमल्चिंग में हम प्राकृतिक और जैविक सामग्री का इस्तेमाल करते हैं, जो मिट्टी में मिलकर जमीन की उर्वरता बढ़ाती है और पर्यावरण को साफ़-सुथरा रखती है। यह तकनीक न सिर्फ हमारे खेतों के लिए फायदेमंद है, बल्कि पर्यावरण की रक्षा के लिए भी बहुत ज़रूरी है। आज जब हमें खेती में नई-नई तकनीकों को अपनाना है, तब बायोमल्चिंग एक ऐसा कदम है जो किसानों को प्रकृति के साथ तालमेल बिठाने में मदद करता है। इसे अपनाकर हम अपनी मिट्टी को स्वस्थ रख सकते हैं और साथ ही बेहतर पैदावार भी सुनिश्चित कर सकते हैं।

कृषि में प्लास्टिक मल्चिंग का उपयोग: प्लास्टिक मल्चिंग ने हाल के दशकों में किसानों के बीच काफी लोकप्रियता हासिल की है। इसकी वजह यह है कि प्लास्टिक की पतली फिल्म मिट्टी की नमी लंबे समय तक बनाए रखती है, जिससे सिंचाई कम करनी पड़ती है। साथ ही, यह खरपतवार को बढ़ने से रोकता है और फसल की जड़ों को तापमान के तेज उतार-चढ़ाव से बचाता है। इन फायदों की वजह से किसानों को उत्पादन में बढ़ोतरी देखने को मिली है और खेती में काम भी आसान हुआ है।

प्लास्टिक मल्चिंग के फायदे * मिट्टी की नमी को बनाए रखना * खरपतवार नियंत्रण * मिट्टी का तापमान संतुलित रखना * फसल की पैदावार में वृद्धि * सिंचाई के खर्च और समय में कमी * खेती के काम को सरल बनाना। हालांकि प्लास्टिक मल्चिंग के ये फायदे हैं, इसके कई नुकसान भी हैं। प्लास्टिक मल्चिंग मिट्टी में सैकड़ों सालों तक नहीं सड़ती और मिट्टी में जमा होकर प्रदूषण फैलाती है। इससे मिट्टी की बनावट खराब होती है और पानी का निकास प्रभावित होता है। इसके अलावा, प्लास्टिक कचरे का उचित निपटान न होने से यह नदियों, खेतों और पर्यावरण के लिए गंभीर समस्या बन चुका है।

प्लास्टिक मल्चिंग के नुकसान * जैविक रूप से नष्ट न होना * मिट्टी की प्राकृतिक बनावट में बाधा * जल निकासी में दिक्कत * पर्यावरण प्रदूषण बढ़ाना * कचरे का निपटान मुश्किल होना। पर्यावरण संरक्षण के बढ़ते दबाव के चलते अब किसानों और वैज्ञानिकों की कोशिश है कि प्लास्टिक मल्चिंग के पर्यावरण-अनुकूल विकल्प खोजे जाएं, जो खेती के लिए उतने ही प्रभावी हों लेकिन प्रकृति को नुकसान न पहुंचाएं।

बायोमल्चिंग: एक हरित विकल्प: जब हम प्लास्टिक मल्चिंग के पर्यावरण पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों को देखते हैं, तो बायोमल्चिंग एक बहुत ही प्रभावी और सुरक्षित विकल्प के रूप में उभरता है। इसमें प्राकृतिक या जैविक रूप से सड़ने वाली सामग्रियों का इस्तेमाल किया जाता है, जो समय के साथ पूरी तरह मिट्टी में मिल जाती हैं और मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने में मदद करती हैं। बायोमल्चिंग से न सिर्फ पर्यावरण में प्रदूषण कम होता है, बल्कि खेत की मिट्टी की सेहत भी बेहतर होती है। बायोमल्चिंग के लिए उपयोग में आने वाली सामग्री में पत्ते, फसल के अवशेष, भूसा, कॉर्नस्टार्च और जैवप्लास्टिक जैसे पदार्थ शामिल होते हैं। ये सभी प्राकृतिक रूप से टूटते हैं और मिट्टी में पोषक तत्व छोड़ते हैं।

बायोमल्चिंग के प्रमुख प्रकार: बायोमल्चिंग में कई तरह की प्राकृतिक और जैविक सामग्री इस्तेमाल की जाती हैं, जो मिट्टी में आसानी से सड़ जाती हैं और पर्यावरण को नुकसान नहीं पहुंचातीं। ये सामग्री किसानों के लिए स्थानीय स्तर पर उपलब्ध होती हैं और खेती की अलग-अलग जरूरतों को पूरा करती हैं।

सबसे सामान्य प्रकार हैं:

पत्ते और फसल के अवशेष: कटाई के बाद बची हुई फसल या पेड़-पौधों के पत्ते खेत में फैलाकर मल्चिंग के रूप में उपयोग किए जाते हैं। यह सस्ता, सरल और प्रभावी तरीका है जो मिट्टी की नमी बनाए रखता है।

भूसा: धान की कटाई के बाद बचा भूसा भी मल्चिंग के लिए प्रयोग किया जाता है। यह नमी संरक्षण के साथ-साथ मिट्टी को ठंडा रखता है और खरपतवार नियंत्रण में मदद करता है।

जैवप्लास्टिक (बायोप्लास्टिक): ये प्लास्टिक जैसे दिखते हैं, लेकिन पूरी तरह से बायोडिग्रेडेबल होते हैं। कॉर्नस्टार्च और पॉलीहाइड्रॉक्सील एल्केनोएट्स (PHA) जैसे जैवप्लास्टिक आधुनिक कृषि में इस्तेमाल हो रहे हैं, जो मिट्टी में मिल जाते हैं और पर्यावरण के लिए सुरक्षित हैं।

खाद्य और कृषि अपशिष्ट: कुछ जगहों पर भोजन या फसल के बाकी हिस्सों का भी मल्चिंग के रूप में उपयोग किया जाता है, जिससे ये पदार्थ बर्बाद न हों और जमीन को पोषण मिले। इन विकल्पों से किसान अपनी ज़रूरत, उपलब्ध संसाधन और क्षेत्र के हिसाब से बायोमल्चिंग का चयन कर सकते हैं, जिससे पर्यावरण संरक्षण के साथ-साथ खेती भी बेहतर होती है।

बायोमल्चिंग के कृषि लाभ: बायोमल्चिंग के उपयोग से खेतों में कई तरह के लाभ होते हैं, जो किसानों के लिए उत्पादन और मिट्टी दोनों के लिए फायदेमंद साबित होते हैं। सबसे पहले, यह मिट्टी की नमी को लंबे समय तक बनाए रखता है, जिससे सिंचाई की आवश्यकता कम हो जाती है और पानी की बचत होती है। साथ ही, बायोमल्चिंग खरपतवार को बढ़ने से रोकने में मदद करता है, जिससे फसल को ज्यादा पोषण मिलता है और किसानों को निराई-गुड़ाई में कम मेहनत करनी पड़ती है। मिट्टी का तापमान बायोमल्चिंग से नियंत्रित रहता है, जो खासकर गर्म या ठंडे मौसम में फसलों के विकास के लिए जरूरी होता है। इसके अलावा, जब बायोमल्चिंग सामग्री सड़ती है, तो वह मिट्टी में कार्बन और अन्य पोषक तत्व छोड़ती है, जिससे मिट्टी की उर्वरता और जैविक सक्रियता बढ़ती है। यह मिट्टी के स्वास्थ्य के लिए बहुत महत्वपूर्ण है और फसल उत्पादन को भी बेहतर बनाता है।

इसके कुछ मुख्य लाभ इस प्रकार हैं: * मिट्टी की नमी संरक्षण में सहायक * खरपतवार नियंत्रण करता है * मिट्टी का तापमान संतुलित रखता है * मिट्टी की उर्वरता बढ़ाता है * मिट्टी की जैविक क्रियाशीलता में सुधार करता है * फसल की पैदावार और गुणवत्ता में वृद्धि करता है * सिंचाई के खर्च और मेहनत को कम करता है

इन सभी कारणों से बायोमल्चिंग एक टिकाऊ और पर्यावरण-हितैषी खेती का हिस्सा बन चुका है, जो किसानों के लिए बेहतर फसल और स्वस्थ मिट्टी सुनिश्चित करता है।

बायोमल्चिंग के आर्थिक और सामाजिक पहलू- बायोमल्चिंग अपनाने से न केवल पर्यावरण को फायदा होता है, बल्कि यह किसानों की आर्थिक स्थिति और सामाजिक जीवन पर भी सकारात्मक प्रभाव डालता है। आर्थिक रूप से देखें तो पारंपरिक प्लास्टिक मल्चिंग की तुलना में बायोमल्चिंग सामग्री आमतौर पर सस्ती या स्थानीय स्तर पर आसानी से उपलब्ध होती है, जिससे लागत कम हो जाती है। हालांकि, कुछ खास जैवप्लास्टिक सामग्री महंगी हो सकती हैं, लेकिन उनकी बायोडिग्रेडेबल और पर्यावरणीय लाभों को देखते हुए यह निवेश लंबे समय में फायदे का सौदा साबित होता है। साथ ही, बायोमल्चिंग से किसानों को सिंचाई और निराई-गुड़ाई जैसे कामों में भी बचत होती है, जिससे उनकी मेहनत कम होती है और वे अन्य कृषि गतिविधियों या परिवार के लिए अधिक समय निकाल पाते हैं। इससे उनकी जीवन गुणवत्ता में सुधार होता है और खेती अधिक टिकाऊ बनती है। सरकारें और विभिन्न संस्थान भी बायोमल्चिंग को बढ़ावा देने के लिए योजनाएं चला रहे हैं, जैसे कि प्रशिक्षण कार्यक्रम, सब्सिडी और तकनीकी सहायता, ताकि अधिक से अधिक किसान इस हरित तकनीक को अपना सकें। इससे सामाजिक स्तर पर जागरूकता बढ़ रही है और पर्यावरण के प्रति जिम्मेदारी की भावना मजबूत हो रही है। इस प्रकार, बायोमल्चिंग न केवल कृषि की आर्थिक स्थिरता को बढ़ाता है बल्कि किसानों और समुदायों के सामाजिक विकास में भी सहायक होता है। यह एक ऐसा कदम है जो पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक लाभ दोनों को संतुलित करता है।

बायोमल्चिंग के प्रयोग में आने वाली चुनौतियां- जहां बायोमल्चिंग खेती के लिए एक पर्यावरण-हितैषी विकल्प है, वहीं इसके व्यापक उपयोग के रास्ते में कई चुनौतियां भी हैं। सबसे बड़ी चुनौती है बायोमल्चिंग सामग्री की स्थिर और पर्याप्त उपलब्धता। कई जगहों पर प्राकृतिक अवशेष या जैवप्लास्टिक की कमी के कारण किसानों के लिए इसे अपनाना मुश्किल हो जाता है। खासकर छोटे और सीमांत किसान, जिन्हें इन सामग्रियों तक पहुंचना मुश्किल होता है। दूसरी समस्या है बायोमल्चिंग सामग्री की गुणवत्ता और प्रभावशीलता। कभी-कभी सामग्री की गुणवत्ता ठीक नहीं होती या वह पूरी तरह से सड़ नहीं पाती, जिससे फसल और मिट्टी पर प्रभाव कम हो जाता है। इसके अलावा, बायोमल्चिंग के प्रयोग में उचित तकनीकी ज्ञान और प्रशिक्षण की कमी भी एक बड़ा रोड़ा है। कई किसान नई तकनीकों को समझने और अपनाने में हिचकिचाते हैं। इसके अलावा, जैवप्लास्टिक जैसे कुछ विकल्प महंगे होते हैं, जिससे किसानों की आर्थिक क्षमता पर दबाव पड़ता है। जागरूकता की कमी भी बड़ी समस्या है, क्योंकि बहुत से किसान पर्यावरणीय लाभों को समझ नहीं पाते और पुराने तरीकों से जुड़े रहते हैं। इन चुनौतियों से निपटने के लिए सरकारों, शोध संस्थानों और सामाजिक संगठनों को मिलकर काम करना होगा। किसानों को सही जानकारी, प्रशिक्षण और आर्थिक सहायता प्रदान करके बायोमल्चिंग को आम बनाना आवश्यक है। तभी यह तकनीक खेती में सच्चे अर्थों में सफलता पा सकती है।

निष्कर्ष: कृषि में बायोमल्चिंग प्लास्टिक मल्चिंग के मुकाबले एक स्वच्छ, टिकाऊ और पर्यावरण-हितैषी विकल्प के रूप में उभर कर सामने आया है। यह न केवल किसानों की मिट्टी की उर्वरता और फसल की गुणवत्ता को बेहतर बनाता है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्राकृतिक और बायोडिग्रेडेबल सामग्रियों का उपयोग कर, बायोमल्चिंग मिट्टी की नमी बनाए रखने, खरपतवार नियंत्रण करने और तापमान संतुलित रखने में मदद करता है।

हालांकि, बायोमल्चिंग के उपयोग में कुछ चुनौतियाँ हैं, जैसे सामग्री की उपलब्धता, लागत और किसानों में जागरूकता की कमी। इन समस्याओं को दूर करने के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान, सरकारी योजनाएं और किसानों को प्रशिक्षित करना आवश्यक है। भविष्य में जब यह तकनीक अधिक लोकप्रिय होगी, तब हम खेती को और अधिक टिकाऊ, लाभकारी और पर्यावरण-संरक्षणकारी बना पाएंगे। इसलिए, बायोमल्चिंग को अपनाना न सिर्फ किसानों के लिए फायदेमंद है, बल्कि हमारे पूरे पर्यावरण और आने वाली पीढ़ियों के लिए भी ज़रूरी है। यह कदम हमें एक स्वस्थ और हरित कृषि की ओर ले जाएगा।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

✎ **अभिषेक सिंह** सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

✎ **डॉ. ललित कुमार सनोदिया** सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) वि.वि. प्रयागराज

डक्टलेस थ्रेसर मशीन: आधुनिक कृषि की ओर बढ़ता एक महत्वपूर्ण कदम

डक्टलेस थ्रेसर मशीन : आधुनिक कृषि की नई दिशा- भारत जैसे कृषि प्रधान देश में खेती को अधिक उत्पादक, सुरक्षित और किफायती बनाने के लिए आधुनिक तकनीकों का उपयोग लगातार बढ़ रहा है। इन्हीं आधुनिक तकनीकों में से एक है डक्टलेस थ्रेसर मशीन, जो किसानों के लिए थ्रेसिंग प्रक्रिया को आसान, तेज और सुरक्षित बनाती है। यह मशीन पारंपरिक थ्रेसर की कमियों को दूर करते हुए आधुनिक कृषि की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम साबित हो रही है।

परिचय- भारत में कृषि को अधिक उत्पादक और आधुनिक बनाने के लिए नई तकनीकों का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। पारंपरिक थ्रेसिंग विधियों में समय, मेहनत और लागत अधिक लगती है, इसलिए किसान अब उन्नत मशीनों की ओर बढ़ रहे हैं। इन्हीं आधुनिक उपकरणों में से एक है डक्टलेस थ्रेसर मशीन, जो थ्रेसिंग प्रक्रिया को अधिक सुरक्षित, तेज और प्रभावी बनाती है। डक्टलेस डिज़ाइन के कारण यह मशीन न केवल अनाज को साफ-सुथरा निकालती है, बल्कि किसानों की मेहनत भी काफी कम कर देती है। इसलिए यह मशीन आज की आधुनिक कृषि में एक नई दिशा की ओर संकेत करती है।

डक्टलेस थ्रेसर मशीन क्या है?- डक्टलेस थ्रेसर मशीन एक ऐसी उन्नत कृषि मशीन है, जिसे फसल की थ्रेसिंग (अनाज निकालने की प्रक्रिया) को अधिक सरल, सुरक्षित और प्रभावी बनाने के उद्देश्य से डिजाइन किया गया है। पारंपरिक थ्रेसर मशीनों में लंबे डक्ट (नलिकाएँ) लगी होती थीं, जिनसे भूसा और अवशेष बाहर निकलते थे, लेकिन इन डक्ट्स में बार-बार अवरोध, धूल फैलाव और दुर्घटनाओं की आशंका रहती थी। डक्टलेस थ्रेसर मशीन में यह समस्या पूरी तरह समाप्त कर दी गई है, क्योंकि इसमें डक्ट का उपयोग ही नहीं होता। इसका कॉम्पैक्ट और मजबूत ढाँचा इसे अधिक विश्वसनीय बनाता है।

डक्टलेस थ्रेसर मशीन के उद्देश्य

1.थ्रेसिंग प्रक्रिया को सरल, सुरक्षित और प्रभावी बनाना- किसानों को बिना जटिल डक्ट सिस्टम के आसान और सुचारू थ्रेसिंग सुविधा प्रदान करना।

2.अनाज की टूट-फूट को कम करना- थ्रेसिंग के दौरान दानों पर अनावश्यक प्रहार या घर्षण को रोककर गुणवत्ता में सुधार करना।

3.थ्रेसिंग में समय और श्रम की बचत करना- तेज़ गति और नियंत्रित प्रणाली के माध्यम से कम समय में अधिक फसल प्रोसेस करना।

4.ऊर्जा की खपत को कम करना- मशीन को इस तरह डिजाइन करना कि कम इंधन/बिजली में अधिक कार्यक्षमता प्राप्त हो।

5.सुरक्षा स्तर को बढ़ाना-डक्ट और खुले हिस्सों से होने वाली संभावित दुर्घटनाओं को कम करना और ऑपरेटर के लिए सुरक्षित वातावरण बनाना।

6.भूसा और कचरे का बेहतर पृथक्करण करना- नियंत्रित वायु प्रवाह और गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत से अवशेषों का साफ-सुथरा अलगाव सुनिश्चित करना।

7.पर्यावरण प्रदूषण को कम करना- धूल और अवशेषों के अनियंत्रित फैलाव को रोकते हुए पर्यावरण को स्वच्छ रखना।

8.कृषि यंत्रीकरण को बढ़ावा देना- खेती में आधुनिक तकनीकों के इस्तेमाल को प्रोत्साहित करते हुए उत्पादन क्षमता और कृषि लाभ बढ़ाना।

मशीन की प्रमुख विशेषताएँ

1.डक्ट रहित आधुनिक डिज़ाइन- मशीन में डक्ट नहीं होने से ब्लॉकेज की समस्या और रखरखाव की जटिलताएँ समाप्त हो जाती हैं।

2.उच्च सुरक्षा मानक - इसके सुरक्षित ढाँचे के कारण दुर्घटनाओं की संभावना कम होती है, खासकर उन किसानों के लिए जो लंबे समय तक मशीन चलाते हैं।

3.थ्रेसिंग में उच्च दक्षता - यह मशीन तेज़ी से फसल को थ्रेश करती है, और अनाज की टूट-फूट को न्यूनतम रखती है।

4.कम ऊर्जा खपत - पारंपरिक मॉडलों की तुलना में कम इंधन या बिजली की आवश्यकता होती है।

5.मेंटेनेंस आसान - मशीन के कम हिस्से होने से इसकी देखभाल सरल और कम खर्चीली होती है।

किसानों के लिए फायदेमंद क्यों?

1. समय और श्रम की बचत- डक्टलेस थ्रेसर मशीन बहुत तेज़ी से काम करती है। इससे किसानों को समय और मेहनत दोनों की बचत होती है, विशेष रूप से कटाई के मौसम में जब काम का दबाव सबसे अधिक होता है।

2. उत्पादन की गुणवत्ता में सुधार- अनाज के दानों में टूट-फूट कम होने से बाजार में बेहतर कीमत प्राप्त होती है। यह मशीन फसल को नुकसान पहुँचाए बिना साफ और सुरक्षित तरीके से थ्रेसिंग करती है।

3. लागत में कमी- कम इंधन, कम रखरखाव और अधिक दक्षता के कारण किसानों पर लागत का बोझ घटता है। छोटे किसान भी आसानी से इसका उपयोग कर सकते हैं।

4. पर्यावरण पर कम प्रभाव- इस मशीन में धूल और भूसा नियंत्रित रूप से निकलता है, जिससे खेतों में वायु प्रदूषण कम होता है। कार्य क्षेत्र में स्वच्छता और दृश्यता बेहतर बनी रहती है।

5. पोर्टेबल और आसान संचालन- मशीन का वजन और आकार ऐसा होता है कि इसे छोटे-बड़े दोनों खेतों में आसानी से ले जाया जा सकता है। नए किसान या मजदूर भी इसे आसानी से चला सकते हैं।

आधुनिक कृषि में नई दिशा- कृषि क्षेत्र में तकनीकी विकास का लक्ष्य है–कम लागत में अधिक उत्पादन। डक्टलेस थ्रेसर मशीन इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। यह किसानों की सुरक्षा, उत्पादन क्षमता और आय को बढ़ाने में मदद करती है। स्मार्ट खेती, यंत्रीकरण और आधुनिक कृषि पद्धतियों के युग में यह मशीन किसानों के लिए एक भरोसेमंद और सशक्त उपकरण बनकर उभरी है।

निष्कर्ष- डक्टलेस थ्रेसर मशीन खेती में क्रांतिकारी बदलाव ला रही है। यह न केवल किसानों की मेहनत कम करती है, बल्कि उनकी आय बढ़ाने में भी मददगार साबित होती है। आधुनिक कृषि के लिए ऐसी मशीनें एक नई दिशा और नए अवसर लेकर आई हैं। आधुनिक कृषि का उद्देश्य केवल अधिक उत्पादन नहीं, बल्कि टिकाऊ और सुरक्षित खेती को बढ़ावा देना भी है। इस दृष्टि से डक्टलेस थ्रेसर मशीन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह श्रम पर निर्भरता को कम कर, समय की बचत करती है और किसानों की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने में सहायक होती है।डक्टलेस थ्रेसर मशीन आधुनिक कृषि की दिशा में एक सशक्त कदम है।

01/2025-26

संरक्षण कृषि: भविष्य की टिकाऊ खेती

अनुराग सिंह मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग

हर्षित सिंह सस्य विज्ञान विभाग

अमन यादव, हर्षित कटियार कीट विज्ञान विभाग

राजुल गोंड, जया गुप्ता मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या

प्रस्तावना: कृषि भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। लगभग 55% से अधिक जनसंख्या आज भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। बढ़ती जनसंख्या, घटती उपजाऊ भूमि, जल संकट, जलवायु परिवर्तन और मृदा क्षरण ने पारंपरिक कृषि प्रणाली को चुनौती दी है। इन परिस्थितियों में संरक्षण कृषि (Conservation Agriculture) भविष्य की टिकाऊ खेती के रूप में उभरकर सामने आई है। संरक्षण कृषि प्राकृतिक संसाधनों, जैव विविधता और श्रम का संरक्षण करती है। यह मृदा जल की उपलब्धता बढ़ाती है, गर्मी और सूखे के तनाव को कम करती है, और दीर्घावधि में मृदा स्वास्थ्य को बेहतर बनाती है।

संरक्षण कृषि एक ऐसी कृषि प्रणाली है जो कृषि योग्य भूमि के नुकसान को रोक सकती है और साथ ही बंजर भूमि का पुनर्जनन भी कर सकती है। यह स्थायी मृदा आवरण, न्यूनतम मृदा विक्षोभ और पादप प्रजातियों के विविधीकरण को बढ़ावा देती है। यह भूमि की सतह के ऊपर और नीचे जैव विविधता और प्राकृतिक जैविक प्रक्रियाओं को बढ़ाती है, जिससे जल और पोषक तत्वों के उपयोग की दक्षता में वृद्धि होती है और फसल उत्पादन में सुधार और निरंतरता आती है। संरक्षण कृषि सिद्धांत स्थानीय रूप से अनुकूलित प्रथाओं के साथ सभी कृषि परिदृश्यों और भूमि उपयोगों पर सार्वभौमिक रूप से लागू होते हैं। यांत्रिक मृदा विक्षोभ जैसे मृदा हस्तक्षेपों को पूर्णतः न्यूनतम कर दिया जाता है या उनसे बचा जाता है, और खनिज या जैविक मूल के कृषि रसायनों और पादप पोषक तत्वों जैसे बाहरी आदानों का इष्टतम उपयोग किया जाता है और वे ऐसे तरीकों और मात्राओं में उपयोग किए जाते हैं जो जैविक प्रक्रियाओं में हस्तक्षेप या व्यवधान नहीं डालते। कृषि-आधारित कृषि पद्धति समय पर संचालन जैसी उत्तम कृषि-प्रणाली को सुगम बनाती है और वर्षा-आधारित तथा सिंचित उत्पादन के लिए समग्र कृषि-प्रणाली में सुधार लाती है। गुणवत्तापूर्ण बीजों के उपयोग, एकीकृत कीट, पोषक तत्व, खरपतवार और जल प्रबंधन आदि सहित अन्य ज्ञात उत्तम प्रथाओं के पूरक के रूप में, कृषि-आधारित कृषि पद्धति टिकाऊ कृषि उत्पादन गहनता का आधार है। यह उत्पादन क्षेत्रों के एकीकरण के लिए अधिक विकल्प प्रदान करती है, जैसे फसल-पशुधन एकीकरण और कृषि परिदृश्य में वृक्षों और चारागाहों का एकीकरण।

मुख्य सिद्धांत : इसका उद्देश्य है–मृदा को कम से कम छेड़ना, उसकी प्राकृतिक उर्वरकता को सुरक्षित रखना, जल संरक्षण करना और उत्पादन लागत को कम कर के किसानों को अधिक लाभ देना, सरल शब्दों में, संरक्षण कृषि ऐसी खेती है जो धरती को थकाती नहीं, बल्कि उसकी क्षमता को बनाए रखती है।

संरक्षण कृषि की आवश्यकता: आज भारत जिन कृषि समस्याओं से जूझ रहा है, वे संरक्षण कृषि को अपनाने की अनिवार्यता दर्शाती हैं। प्रमुख कारण-

(1) **मृदा क्षरण:** भारत में हर साल लगभग 5.3 अरब टन मृदा का क्षरण होता है।

(2) **घटती भूमि उर्वरता:** रासायनिक खादों के अंधाधुंध उपयोग ने मृदा के कार्बनिक पदार्थ (Organic Carbon) को 1% से नीचे पहुँचाया है।

(3) **जल संकट:** सिंचाई के अत्यधिक प्रयोग से भूजल स्तर लगातार गिर रहा है।

(4) **जलवायु परिवर्तन:** अनियमित वर्षा, सूखा और बाढ़ जैसी घटनाएँ कृषि उत्पादन को प्रभावित कर रही हैं।

(5) **उच्च लागत और कम लाभ:** बीज, खाद, डीज़ल, श्रमिक और सिंचाई का खर्च लगातार बढ़ रहा है।

इन परिस्थितियों में संरक्षण कृषि किसानों को कम लागत, अधिक लाभ और टिकाऊ खेती का रास्ता दिखाती है।

संरक्षण कृषि के मूल सिद्धांत: संरक्षण कृषि के तीन मूल सिद्धांत हैं: न्यूनतम जुताई (मिट्टी को कम से कम छेड़ा जाता है), फसल चक्रण और विविधीकरण (फसलों को घुमाना या मिलाना), और स्थायी मिट्टी का आवरण (गीली घास या फसल अवशेषों से मिट्टी को ढकना)। इन सिद्धांतों का पालन करने से मिट्टी का क्षरण कम होता है, पर्यावरण की रक्षा होती है, और कृषि उत्पादकता बढ़ती है।

(1) **मृदा का न्यूनतम विचलन:** खेत की जुताई कम या न करना, मिट्टी की प्राकृतिक संरचना को सुरक्षित रखना, नमी संरक्षण का बढ़ना, डीज़ल व समय की बचत

(2) **फसल अवशेष संरक्षण:** फसल कटाई के बाद अवशेष (पराली) को जलाने के बजाय खेत में रहने देना, मिट्टी का तापमान संतुलित रहता है, खरपतवार कम होते हैं, पानी की आवश्यकता घटती है, मिट्टी का जैविक कार्बन बढ़ता है।

(3) **फसल विविधता और फसल चक्रण:** एक ही भूमि पर अलग-अलग फसलें उगाना, रोग और कीट नियंत्रण, पोषक तत्वों का संतुलन, मिट्टी की उर्वरकता में सुधार

संरक्षण कृषि की प्रमुख तकनीकें: शून्य जुताई, हैप्पी सीडर तकनीक, मल्चिंग,ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई, कवर क्रॉपिंग, संरक्षित खेती

संरक्षण कृषि के लाभ

संरक्षण कृषि को अपनाने से तीन प्रमुख आर्थिक लाभ हो सकते हैं: * समय की बचत और इस प्रकार श्रम की आवश्यकता में कमी। * ईंधन, मशीनरी के संचालन और रखरखाव जैसे खर्चों में कमी, साथ ही श्रम लागत में भी कमी। * उच्च दक्षता का अर्थ है कम इनपुट के लिए अधिक आउटपुट।

उत्पादन चक्र के दौरान श्रम वितरण पर संरक्षण कृषि का सकारात्मक प्रभाव और, इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि श्रम की आवश्यकता में कमी, लैटिन अमेरिका के किसानों द्वारा संरक्षण कृषि को अपनाने के मुख्य कारण हैं, विशेष रूप से उन किसानों के लिए जो पूरी तरह से पारिवारिक श्रम पर निर्भर हैं।

कृषि संबंधी लाभ : फसल अवशेषों के लगातार प्रयोग से मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है। शुरुआत में यह वृद्धि मिट्टी की ऊपरी परत तक ही सीमित रहती है, लेकिन समय के साथ यह गहरी परतों तक फैल जाती है। मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की महत्वपूर्ण भूमिका होती है: उर्वरकों का प्रभावी उपयोग, जल धारण क्षमता, मिट्टी का संघनन, जड़ों के लिए अनुकूल वातावरण और पोषक तत्वों का संरक्षण, ये सभी कार्बनिक पदार्थ पर निर्भर करते हैं।

आर्थिक लाभ: न्यूनतम जुताई से मजदूरी खर्च कम, उर्वरक की आवश्यकता घटती है।

पर्यावरणीय लाभ: पराली न जलाने से प्रदूषण कम, कार्बन उत्सर्जन घटता है, मृदा स्वास्थ्य बेहतर

उत्पादन से जुड़े लाभ: मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है, फसल उत्पादकता में वृद्धि, सूखा व गर्मी से सुरक्षा

जल संरक्षण: मिट्टी में नमी लंबे समय तक रहती है, सिंचाई की आवश्यकता 30-40% कम

भारत में संरक्षण कृषि की चुनौतियाँ: जलवायु परिवर्तन और इसका प्रभाव: जलवायु परिवर्तन के कारण भारतीय कृषि को गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। मौसम के अनियमित पैटर्न के कारण बारिश का पूर्वानुमान लगाना मुश्किल हो गया है, जिससे फसलों की पैदावार प्रभावित हो रही है। किसान सूखे और बाढ़ दोनों से जूझ रहे हैं, जिससे बुवाई और कटाई की योजना बनाना कठिन हो गया है। इस अनिश्चितता के कारण खाद्य पदार्थों की कमी हो सकती है और उपभोक्ताओं के लिए कीमतें बढ़ सकती हैं।

जल संकट और प्रबंधन संबंधी मुद्दे: जल संकट एक और बड़ी समस्या है। कई किसान सिंचाई हेतु मानसून की बारिश पर निर्भर हैं लेकिन जलवायु परिवर्तन के कारण ये बारिशें कम भरोसेमंद होती जा रही हैं। **किसानों को अक्सर निम्नलिखित समस्याओं का सामना करना पड़ता है:**

* जल संसाधनों तक सीमित पहुंच * अक्षम सिंचाई प्रणालियां * भूजल का अत्यधिक दोहन

ये कारक जल संकट के एक ऐसे चक्र में योगदान करते हैं जो कृषि उत्पादकता के लिए खतरा पैदा करता है।

मृदा क्षरण और उर्वरता: रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग और कृषि संबंधी अनुचित पद्धतियों के कारण मृदा स्वास्थ्य में गिरावट आ रही है। **इस गिरावट से निम्नलिखित समस्याएं उत्पन्न होती हैं:** * मिट्टी की उर्वरता में कमी * कीटों और बीमारियों के प्रति संवेदनशीलता में वृद्धि * कम फसल पैदावार

किसानों को मिट्टी की सेहत बहाल करने और टिकाऊ खेती सुनिश्चित करने के लिए बेहतर पद्धतियों को अपनाना होगा।

i किसानों में जागरूकता की कमी ii मशीनों की उपलब्धता सीमित iii प्रारंभिक लागत अधिक iv तकनीकी प्रशिक्षण का अभाव v पराली प्रबंधन की कठिनाइयाँ vi सरकारी समर्थन में कमी

संरक्षण कृषि और जलवायु परिवर्तन

संरक्षण कृषि को "Climate-Smart Agriculture" भी कहा जाता है क्योंकि: यह ग्रीनहाउस गैसों को कम करती है, मिट्टी में कार्बन का भंडारण बढ़ाती है, सूखा-सहिष्णु खेती को बढ़ावा देती है, अचानक तापमान बढ़ने से फसल को बचाती है

निष्कर्ष: संरक्षण कृषि केवल एक तकनीक नहीं, बल्कि एक सस्टेनेबल कृषि दर्शन है। यह खेती को प्राकृतिक नियमों के अनुरूप बनाती है और संसाधनों के संरक्षण के साथ किसान की आय बढ़ाती है। भारत जैसे विशाल कृषि देश में संरक्षण कृषि न केवल भविष्य की आवश्यकता है, बल्कि आज की अनिवार्यता भी है। यदि नीतिगत समर्थन, आधुनिक तकनीक और किसान प्रशिक्षण पर ध्यान दिया जाए तो संरक्षण कृषि भारत के कृषि क्षेत्र में एक क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकती है।

कार्बन पृथक्करण : विधियां और जलवायु परिवर्तन

अनुराग सिंह मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग
हर्षित सिंह सस्य विज्ञान विभाग
अमन यादव, हर्षित कटियार
दीपांशु सिंह, अभिषेक द्विवेदी कीट विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज,अयोध्या

कार्बन फार्मिंग क्या है?: कार्बन फार्मिंग, जिसे कार्बन सीक्वेस्ट्रेशन भी कहा जाता है, कृषि प्रबंधन की वह प्रणाली है जो भूमि में कार्बन के भंडारण को बढ़ाती है और वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को घटाने में सहायक होती है। इसमें ऐसी कृषि पद्धतियाँ शामिल होती हैं जो वातावरण से CO_2 को अवशोषित कर उसे पौधों की जैविक सामग्री और मृदा के कार्बनिक पदार्थ में परिवर्तित करने की प्रक्रिया को तेज करती हैं। जब उन्नत भूमि प्रबंधन और संरक्षण उपायों के माध्यम से कार्बन संचयन, कार्बन हानि से अधिक हो जाता है, तब कार्बन फार्मिंग को सफल माना जाता है।

कृषि से होने वाला उत्सर्जन

कृषि पृथ्वी की आधे से अधिक स्थलीय सतह पर फैली हुई है और वैश्विक ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में लगभग एक-तिहाई योगदान देती है। भारत सरकार द्वारा UNFCCC को सौंपी गई चौथी द्विवार्षिक अद्यतन रिपोर्ट (2024) के अनुसार, देश के कुल GHG उत्सर्जन में कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी लगभग 13.72% है। भारत में कृषि उत्सर्जन मुख्यतः पशुधन (54.6%) और नाइट्रोजन आधारित उर्वरकों (19%) के उपयोग से उत्पन्न होता है।

कार्बन फार्मिंग एक व्यवहार्य समाधान क्यों है?

जलवायु-अनुकूल मॉडल: यह जलवायु परिवर्तन से लड़ने में मदद करती है (CO_2 को सोखकर), मिट्टी के स्वास्थ्य और उत्पादकता में सुधार करती है, जैव विविधता बढ़ाती है, और किसानों के लिए आय के नए स्रोत (कार्बन क्रेडिट) पैदा करती है, जिससे यह एक टिकाऊ और लाभदायक कृषि मॉडल बनता है जो खाद्य सुरक्षा में भी योगदान देता है

मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार: यह मिट्टी की संरचना, उर्वरता और जल धारण क्षमता को बढ़ाती है, कटाव को कम करती है, और पौधों को अधिक पोषक तत्व प्रदान करती है।

टिकाऊ कृषि पद्धतियाँ: इसमें कवर क्रॉपिंग, कम जुताई, और कृषि वानिकी (Agroforestry) जैसी विधियाँ शामिल हैं, जो मिट्टी के स्वास्थ्य को बनाए रखती हैं और रासायनिक आदानों की आवश्यकता को कम करती हैं।

जैव विविधता को बढ़ावा: ये पद्धतियाँ सूक्ष्मजीवों, कीटों और वन्यजीवों के आवास को बेहतर बनाती हैं, जिससे पारिस्थितिक तंत्र मजबूत होता है। कार्बन फार्मिंग एक नया और प्रभावी कृषि मॉडल प्रस्तुत करती है जो जलवायु परिवर्तन से निपटने, रोजगार सृजन और किसानों के भविष्य को सुरक्षित करने में सहायक हो सकता है।

कार्बन कैप्चर का अनुकूलन: यह एक समग्र दृष्टिकोण है जो ऐसी कृषि पद्धतियों को बढ़ावा देता है जिनसे CO^2 को वातावरण से हटाकर मृदा और पौधों में संग्रहीत किया जा सके। इससे किसान केवल उपज बढ़ाने तक सीमित न रहकर स्वस्थ पारिस्थितिकी तंत्र और कार्बन जब्ती पर भी ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं जिसे बाद में कार्बन बाजारों में बेचा जा सकता है।

किसान-केंद्रित लाभ: कार्बन फार्मिंग मृदा की गुणवत्ता सुधारने के साथ-साथ किसानों को कार्बन क्रेडिट के माध्यम से अतिरिक्त आय, बेहतर गुणवत्ता वाला जैविक और रसायन-मुक्त भोजन उपलब्ध करा सकती है।

कार्बन बाजार का विस्तार: 2020 में वैश्विक कार्बन बाजार का मूल्य 20% बढ़ा।

2021 में कार्बन डाइऑक्साइड परमिट का वैश्विक कारोबार 164% बढ़कर 760 बिलियन यूरो तक पहुँच गया।

इस प्रकार, भविष्य में कार्बन किसानों के लिए एक नई "नकदी फसल" बन सकता है।

वैश्विक जागरूकता

* 2015 के पेरिस जलवायु सम्मेलन में शुरू की गई '4 per 1000' पहल के अनुसार, यदि वैश्विक मृदा कार्बन में प्रतिवर्ष केवल 0.4% की वृद्धि की जाए, तो यह जीवाश्म ईंधन से होने वाले वार्षिक CO^2 उत्सर्जन की भरपाई कर सकती है।
* कई देशों के राजनीतिक एजेंडे में कार्बन फार्मिंग को प्राथमिकता मिल रही है। अमेरिका किसानों के लिए कार्बन बैंक स्थापित करने की योजना बना रहा है।
* निजी क्षेत्र में भी मैकडॉनल्ड्स, टारगेट और कारगिल जैसी कंपनियां पुनर्योजी कृषि को समर्थन दे रही हैं।
* 2022 में स्ट्राइप, अल्फाबेट, मेटा और शॉपिफाई जैसी कंपनियों ने बड़े पैमाने पर कार्बन रिमूवल निवेश की घोषणा की।
* भारत में मेघालय पूर्वोत्तर क्षेत्र के लिए कार्बन फार्मिंग आधारित सतत कृषि मॉडल विकसित करने की दिशा में कार्य कर रहा है, जबकि सिक्किम पहले ही पूर्णतः जैविक राज्य बन चुका है।

कार्बन फार्मिंग को बढ़ावा देने के उपाय

मृदा की क्षमता का उपयोग: मृदा एक प्रभावी कार्बन सिंक है और जलवायु परिवर्तन से निपटने का एक कम उपयोग किया गया साधन है। भारत को अपने नेट-ज़ीरो लक्ष्यों के लिए इसका अधिकतम उपयोग करना चाहिए।

कानूनी ढांचा: एक व्यापक और दूरदर्शी कार्बन फार्मिंग कानून, संक्रमण रणनीति के साथ, भूमि आधारित कार्बन सिंक को सशक्त बना सकता है।

प्रत्यक्ष प्रोत्साहन: किसानों और वानिकी क्षेत्र को जलवायु-अनुकूल पद्धतियाँ अपनाने के लिए वित्तीय प्रोत्साहन देना आवश्यक है।

कार्बन क्रेडिट और कार्बन बैंक: किसानों को व्यापार योग्य कार्बन क्रेडिट के माध्यम से पुरस्कृत किया जा सकता है जिन्हें उत्सर्जन की भरपाई चाहने वाले निगम खरीद सकते हैं।

सामूहिक प्रयास: प्रभावी नीतियाँ, सार्वजनिक-निजी भागीदारी, सटीक मापन प्रणाली और वित्तीय सहायता के बिना कार्बन फार्मिंग की सफलता संभव नहीं है।

कार्बन पृथक्करण (Carbon Sequestration) के मुख्य रूप से दो प्रकार हैं:

1.जैविक (Biological), जिसमें पेड़-पौधे, मिट्टी और महासागर CO^2 सोखते हैं,

2.भूवैज्ञानिक: जिसमें औद्योगिक स्रोतों से CO^2 को पकड़ा और भूमिगत रूप से संग्रहित किया जाता है साथ ही महासागरीय विधियाँ भी हैं, जो इसे समुद्र में जमा करती हैं।

1. जैविक कार्बन पृथक्करण

यह CO2 को प्राकृतिक "कार्बन सिंक" में जमा करने की प्रक्रिया है.

वानिकी और भूमि उपयोग: वनीकरण, पुनर्वनीकरण और टिकाऊ वन प्रबंधन से पेड़ प्रकाश संश्लेषण द्वारा CO^2 सोखते हैं

मिट्टी: कृषि और घास के मैदानों में मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार करके, जैसे कि नो-टिल फार्मिंग से कार्बन को मिट्टी में रोका जाता है

आर्द्रभूमि (Wetlands): दलदल और पीट भूमि कार्बनिक पदार्थों को जमा करती हैं, जिससे CO^2 वातावरण में नहीं जाती

2. भूवैज्ञानिक कार्बन पृथक्करण

यह औद्योगिक प्रक्रियाओं से CO^2 को पकड़कर भूमि के नीचे गहराई में जमा करने की तकनीक है, जिसे कार्बन कैप्चर और स्टोरेज भी कहते हैं. कार्बन कैप्चर और स्टोरेज

दहन-पूर्व/दहनोत्तर कैप्चर : ईंधन जलाने से पहले या बाद में CO^2 को अलग करना.

ऑक्सीफ्यूल दहन: ऑक्सीजन का उपयोग करके CO^2-समृद्ध गैस बनाना, जिसे आसानी से पकड़ा जा सके.

भंडारण स्थल: CO^2 को तेल/गैस भंडारों, कोयला परतों, या खारे जलाशयों में इंजेक्ट किया जाता है.

3. महासागरीय कार्बन पृथक्करण (Oceanic Carbon Sequestration)

लौह उर्वरीकरण : समुद्र में लोहा डालकर फाइटोप्लांकटन (Phytoplankton) को बढ़ाना, जो CO^2 सोखते हैं.

गहरे समुद्र में इंजेक्शन : सीधे CO^2 को समुद्र में छोड़ना

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

WTO समझौतों का भारतीय कृषि नीति पर प्रभाव

आशीष कुमार (सहायक प्रोफेसर)
APEX विधि विभाग, जयपुर, APEX UNIVERSITY जयपुर (राजस्थान)

प्रस्तावना

विश्व व्यापार संगठन (WTO) ने वैश्विक व्यापार को सुगम बनाने के उद्देश्य से 1995 में स्थापित किया। इसके अंतर्गत अनेक समझौते और नियम बनाए गए, जिनका उद्देश्य व्यापार में पारदर्शिता और निष्पक्षता सुनिश्चित करना है। भारत जैसे विकासशील देश के लिए, WTO समझौतों का प्रभाव कृषि क्षेत्र पर अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। यह प्रभाव न केवल आर्थिक बल्कि सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर भी महसूस किया गया है। इस लेख में हम विस्तार से चर्चा करेंगे कि WTO समझौतों ने भारतीय कृषि नीति को कैसे प्रभावित किया है। साथ ही, हम इन समझौतों के कानूनी पहलुओं का भी विश्लेषण करेंगे। इसके साथ ही, हम यह भी देखेंगे कि इन प्रभावों ने भारतीय किसानों, नीति निर्माताओं और समग्र कृषि क्षेत्र को किस तरह से बदला है।

WTO समझौतों का परिचय

WTO के मुख्य समझौते, जैसे कि कृषि, व्यापार नीति, सब्सिडी और एग्रीकल्चर, भारत की कृषि नीति पर गहरा प्रभाव डालते हैं। इन समझौतों का मुख्य उद्देश्य है कि सदस्य देश अपने व्यापार नियमों को विश्व स्तर पर समन्वित करें। इससे व्यापार में बाधाएं कम होती हैं, लेकिन साथ ही, यह भी आवश्यक हो जाता है कि सदस्य देश अपने घरेलू नीतियों में बदलाव करें। भारत ने भी इन समझौतों को स्वीकार किया है, जिससे उसकी कृषि नीति पर कई तरह के प्रतिबंध और बाधाएं आई हैं।

कृषि सब्सिडी और WTO

सबसे पहले, हम बात करते हैं कृषि सब्सिडी की। WTO के समझौते, विशेष रूप से सब्सिडी और एग्रीकल्चर, यह सुनिश्चित करते हैं कि सदस्य देश अपनी कृषि सब्सिडी को सीमित करें। भारत ने अपने किसानों को सब्सिडी प्रदान की, ताकि वे प्रतिस्पर्धा कर सकें। लेकिन, WTO ने भारत पर यह दबाव डाला कि वह अपनी सब्सिडी सीमा को नियंत्रित करे। इससे भारतीय किसानों को लाभ कम हुआ, क्योंकि सरकार की सब्सिडी सीमित कर दी गई। वहीं, WTO के नियमों के अनुसार, यदि कोई देश अपनी सब्सिडी सीमा से अधिक सब्सिडी प्रदान करता है, तो उसे व्यापार में बाधा माना जाता है। भारत ने इस नियम का सम्मान किया, लेकिन इससे उसकी कृषि नीति पर दबाव बढ़ा। उदाहरण के तौर पर, भारत ने अपने अनाज और धान पर सब्सिडी दी, लेकिन WTO के नियमों के कारण उसे अपनी सब्सिडी सीमा को नियंत्रित करना पड़ा। इससे किसानों को मिलने वाली सहायता कम हो गई, और उनकी आय पर प्रभाव पड़ा।

बाजार पहुंच और व्यापार बाधाएं

WTO समझौतों ने भारतीय कृषि उत्पादों के बाजार पहुंच को भी प्रभावित किया है। वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्धा बढ़ने से भारतीय किसानों को अपने उत्पादों को अधिक प्रतिस्पर्धात्मक बनाने की आवश्यकता पड़ी। इसके साथ ही, कई बार व्यापार बाधाएं भी खड़ी हुई। उदाहरण के तौर पर, यूरोपीय संघ और अमेरिका ने अपने कृषि उत्पादों पर टैरिफ और क्रोटा लगाई, जिससे भारतीय निर्यातकों को नुकसान हुआ। इसके परिणाम स्वरूप, भारतीय कृषि उत्पादों की कीमतें गिरने लगीं। इससे किसानों की आय प्रभावित हुई। दूसरी ओर, भारत ने अपने घरेलू बाजार को सुरक्षित करने के लिए संरक्षणात्मक उपाय किए, लेकिन WTO के नियमों ने इन उपायों को सीमित कर दिया। इस तरह, WTO समझौतों ने भारतीय कृषि नीति को वैश्विक प्रतिस्पर्धा के अनुरूप बनाने का दबाव डाला।

कृषि उत्पादों का निर्यात और WTO

WTO के तहत, भारत ने अपने कृषि उत्पादों का निर्यात बढ़ाने का प्रयास किया लेकिन, इसके साथ ही, निर्यात के लिए मानकों और गुणवत्ता नियमों का पालन करना आवश्यक हो गया। उदाहरण के तौर पर, गेहूं और चावल के निर्यात में गुणवत्ता मानकों का कड़ाई से पालन करना पड़ा। इससे भारतीय किसानों को नई तकनीकों और मानकों को अपनाना पड़ा, जो कभी-कभी उनके लिए चुनौतीपूर्ण साबित हुआ। इसके अलावा, WTO के नियमों के अनुसार, यदि कोई देश अपने कृषि उत्पादों का निर्यात सब्सिडी के माध्यम से बढ़ाता है, तो उसे प्रतिबंधित किया जा सकता है। भारत ने इस नियम का सम्मान किया, लेकिन इससे उसकी कृषि नीति पर दबाव पड़ा। उदाहरण के तौर पर, भारत ने अपने अनाज और तिलहन पर सब्सिडी दी, लेकिन WTO के नियमों के कारण उसे अपनी सहायता सीमित करनी पड़ी।

भारतीय कृषि नीति में बदलाव

WTO समझौतों के प्रभाव से भारतीय कृषि नीति में कई बदलाव हुए। सबसे पहले, सरकार ने अपनी सब्सिडी नीति को नियंत्रित किया। इसके साथ ही, कृषि उत्पादों के निर्यात को बढ़ावा देने के लिए नई रणनीतियों का विकास किया गया। इसके अलावा, भारत ने अपने घरेलू बाजार को सुरक्षित करने के लिए संरक्षणात्मक उपाय भी अपनाए। यह भी देखा गया कि WTO के दबाव के कारण, भारत ने अपनी कृषि नीति में सुधार किया। उदाहरण के तौर पर, उसने नई तकनीकों को अपनाया, ताकि उत्पादकता बढ़े। साथ ही, उसने किसानों को नई बीज और उर्वरक की जानकारी दी। इसके परिणामस्वरूप, भारतीय कृषि में नई ऊर्जा आई।

कानूनी पहलू और WTO समझौतों का प्रभाव

WTO समझौतों का कानूनी आधार बहुत मजबूत है। इन समझौतों का उल्लंघन करने पर सदस्य देशों पर आर्थिक प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं। भारत ने भी इन नियमों का सम्मान किया है। उदाहरण के तौर पर, भारत ने अपनी सब्सिडी सीमा का उल्लंघन नहीं किया, बल्कि अपने नियमों के अनुसार ही कदम उठाए। इसके अलावा, WTO के विवाद समाधान तंत्र का भी भारत ने उपयोग किया है। यदि किसी सदस्य देश ने भारत के खिलाफ कोई कदम उठाया, तो भारत ने WTO के विवाद समाधान तंत्र का सहारा लिया। इससे भारत को अपने हितों की रक्षा करने का अवसर मिला।

भारतीय किसानों पर प्रभाव

WTO समझौतों का भारतीय किसानों पर मिश्रित प्रभाव पड़ा है। एक ओर, प्रतिस्पर्धा बढ़ने से किसानों को नई तकनीकों का लाभ मिला। दूसरी ओर, सब्सिडी और बाजार पहुंच की सीमाओं के कारण उनकी आय प्रभावित हुई। कई किसान छोटे और सीमांत हैं, जिनके लिए यह बदलाव कठिन साबित हुआ। इसके अलावा, निर्यात में बाधाएं और गुणवत्ता मानकों ने किसानों को नई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। कई किसानों ने अपनी उपज का उचित मूल्य नहीं पा सके। इससे उनकी आर्थिक स्थिति कमजोर हुई।

नीति निर्माताओं की प्रतिक्रिया

भारतीय नीति निर्माताओं ने WTO के प्रभाव को ध्यान में रखते हुए कई कदम उठाए। उन्होंने घरेलू बाजार को सुरक्षित करने के लिए संरक्षणात्मक उपाय किए। साथ ही, किसानों को नई तकनीकों और प्रशिक्षण का प्रावधान किया। इसके अलावा, भारत ने अपने कृषि निर्यात को बढ़ावा देने के लिए नई योजनाएं शुरू कीं। उदाहरण के तौर पर, प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि जैसी योजनाओं ने किसानों की आय में सुधार किया। साथ ही, कृषि उत्पादों के मानकों को बेहतर बनाने के लिए भी कदम उठाए गए।

निष्कर्ष

अंत में, यह कहा जा सकता है कि WTO समझौतों का भारतीय कृषि नीति पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इन समझौतों ने भारतीय कृषि को वैश्विक प्रतिस्पर्धा के अनुरूप बनाया है। हालांकि, इससे किसानों को कई चुनौतियों का सामना भी करना पड़ा। इन प्रभावों को समझते हुए, भारत ने अपनी नीतियों में बदलाव किए हैं। साथ ही, कानूनी रूप से भी WTO के नियमों का सम्मान किया है। भविष्य में, भारत को चाहिए कि वह अपने हितों की रक्षा करते हुए, अपने कृषि क्षेत्र को मजबूत बनाए। इससे न केवल किसानों का जीवन बेहतर होगा, बल्कि भारतीय कृषि भी विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धी बन सकेगी।

नूपुर शर्मा विषय विशेषज्ञ (सश्य विज्ञान)
डॉ. बी.एल. मीणा प्राध्यापक (कीट विज्ञान)
डॉ. बी.एल. ढाका प्राध्यापक (प्रसार शिक्षा)
कृषि विज्ञान केन्द्र, सवाईमाधोपुर, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

समेकित कृषि प्रणाली– सफलता की नई राह–सफलता की कहानी

समेकित कृषि प्रणाली मोडल ने कृषक श्री बजरंग सिंह राजावत पुत्र श्री रघुराज सिंह राजावत ग्राम खिजूरी, सवाईमाधोपुर को जिले में एक सफल कृषक के रूप में नयी पहचान दिलवाई है। इन्होंने पारम्परिक खेती की राह को छोड़कर बदलते जलवायु तथा वातावरण को ध्यान में रखते हुए आधुनिक खेती को अपनाकर समेकित कृषि प्रणाली की वैज्ञानिक पद्धति को अपनाया तथा समेकित कृषि प्रणाली के आयाम फसल उत्पादन, बगीचा, बकरी पालन, मुर्गी पालन, डेयरी पालन, सूक्ष्म सिंचाई, केंचुए की खाद, आदि को वैज्ञानिक तरीके से अपनाकर जिले में एक सफल कृषक के रूप में मिसाल कायम की है ! वर्ष 2018-19 से पहले श्री बजरंग सिंह जी पारम्परिक रूप से खेती करते थे जिसमे फसल उत्पादन पर ही मात्रा ध्यान देते थे ! परन्तु कृषि विज्ञानं केंद्र, सवाईमाधोपुर के संपर्क में 2018 में आये तथा केंद्र के शस्य वैज्ञानिक डॉ. नूपुर शर्मा ने बताया की श्री बजरंग को केंद्र द्वारा जलवायु परिवर्तन की स्थिति में समेकित कृषि प्रणाली को वैज्ञानिक तरीके से अपनाने की सलाह दी ! केंद्र द्वारा विभिन्न प्रशिक्षणों, खेत पर विजिट, तथा प्रदर्शन के साथ साथ समय समय पर सभी वैज्ञानिको की सलाह के साथ इन्होने अपने 8 है की खेती में समेकित कृषि प्रणाली के आयाम जैसे फसल उत्पादन जिसमें बाजरा, उड़द (उन्नत किस्म कोटा उड़द-3,4), तिल (आर टी-372), सरसों उन्नत किस्म (गिरिराज, आर एच 725, बीपीएम् 11), ग्रीष्मकालीन मूंग आदि की उन्नत खेती कर फसल विविधीकरण का भी बहुआयामी सफल उद्धरण पेश किया है! अमरुद बगीचा (3.0 है) जिसमे 700 पौधे है तथा अमरुद की किस्म बर्फखान गोला, अलाहबाद सफेदा, एल-49 तथा आंवला के चकैया किस्म के 400 पौधे 1.0 है में है जिनसे वर्ष में 4 से 5 लाख से अधिक का मुनाफा कमा रहे हैं। कृषि वानिकी को भी इन्होने शामिल किया है जिसमे अरडू के 15 पौधे, नीम के 50 पौधे, जामुन, मौसम्बी, करौंदा, निम्बू, मीठा नीम, आम तथा चीकू के भी पौधे शामिल है! पधुपालन इकाई में 6 गाय (नस्ल गिर, होलेस्टिन फ्रीसिएन,) तथा भैस 2 मुर्रा शामिल है जिससे एक दिन में 20 से 25 लीटर दूध प्रति दिन मिलता है जिसके उपयोग डेयरी में करके अधिक मुनाफा कमा रहे है ! बकरी पालन इकाई भी इनकी समेकित कृषि प्रणाली का एक मुख्य आयाम है जिसमे 30 सिरोही नस्ल की बकरिया है बकरी पालन को किसान का चलता फिरता ए टी एम् कहा जाता है जिससे कृषक जब चाहे मुनाफा ले सकता है ! इस इकाई से वर्ष में 3 से 3.5 लाख कमा लेते है ! बकरी पालन इकाई के साथ साथ कृषक ने मुर्गीपालन इकाई (100 मुर्गिया-नस्ल कड़कनाथ, प्रतापढ़न, असील) जिनका कृषक द्वारा उपयोग अंडे तथा मीट के लिए किया गया ! इन्होने सब्जी उत्पादन तथा पुष्प उत्पादन कई को भी समेकित कृषि प्रणाली में शामिल किया है जिसमे विभिन्न सब्जियों तथा फूलो का उत्पादन करके यह घर के खर्चे के साथ साथ मुनाफा भी कमाते है ! इसके अलावा कृषक द्वारा सूक्ष्म सिंचाई पद्धति में फव्वारा व बूँद बूँद सिंचाई, वर्मीकम्पोस्ट इकाई सहित समेकित कृषि प्रणाली के आयामों को अपनाकर वर्ष में 20 से 25 लाख का मुनाफा कमा रहे है ! समेकित कृषि प्रणाली के इन सभी आयामों को वैज्ञानिक तरीके से जोड़कर श्री बजरंग सिंह राजावत आज 20 से 25 लाख रुपये वार्षिक शुद्ध लाभ अर्जित कर रहे हैं। उनकी यह सफलता न केवल आय दोगुनी करने का सशक्त उदाहरण है, बल्कि जिले के किसानों के लिए प्रेरक मॉडल भी है।

उनकी मेहनत, लगन, वैज्ञानिक सोच और कृषि विज्ञान केंद्र के सहयोग ने यह प्रमाणित कर दिया है कि यदि किसान आधुनिक तकनीकों और समेकित कृषि प्रणाली को अपनाए, तो खेती एक लाभकारी एवं स्थायी व्यवसाय बन सकती है।केंद्र के प्राध्यापक डॉ. बी. एल. मीणा के अनुसार, कृषक श्री बजरंग सिंह राजावत ने कृषि के सभी वैज्ञानिक आयामों को अत्यंत प्रभावी रूप से अपनाया है। उन्होंने बीज उपचार, उन्नत किस्मों का चयन, कीट प्रबंधन हेतु फेरोमोन ट्रैप का उपयोग, पोषक तत्व प्रबंधन, मृदा-स्वास्थ्य सुधार, जल-संरक्षण तकनीक, तथा अन्य आधुनिक पद्धतियों को अपने समेकित कृषि मॉडल में सफलतापूर्वक समाहित किया है।

वैज्ञानिक आधार पर विकसित इस मॉडल के उत्कृष्ट परिणामों को देखते हुए उन्हें ब्लॉक स्तर तथा कृषि विज्ञान केंद्र द्वारा अनेक सम्मान एवं पुरस्कार भी प्रदान किए गए हैं। डॉ. मीणा ने कहा कि श्री बजरंग सिंह का यह सफल अनुभव अन्य किसानों के लिए प्रेरणादायक है। बदलते जलवायु परिदृश्य, बढ़ती लागत तथा आय को स्थायी रूप से बढ़ाने की आवश्यकता को देखते हुए समेकित कृषि प्रणाली आज के कृषि क्षेत्र की अनिवार्य मांग है। ऐसे सफल उदाहरणों का प्रसार अन्य कृषकों को भी उन्नत और लाभकारी कृषि की दिशा में प्रेरित करेगा।

दिनेश शिवहरे
Mob. : 98263-55396
मध्य प्रदेश का पहला
श्री दयाल बन्धु केन्द्र
(हिनौतिया वालों की दुकान)
सभी प्रकार की कीटनाशक दवाईयां, जिन्क एवं बीज आदि के थोक एवं खेरीज विक्रेता
गायत्री मंदिर के पास, जवाहर गंज, डबरा जिला ग्वालियर (म.प्र.)
E-mail : shridayalbandhu@gmail.com, dineshshivhare66yahoo.com
08/2025-26

जितेन्द्र कुमार शर्मा, हर्षवर्धन सिंह शेखावत
विजय कमल मीना, लेखा एवं शक्ति सिंह भाटी
कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

फसल में लगने वाले रोगों का जैविक प्रबंधन

रोगों का जैविक नियंत्रण एक परिचय

परंपरागत खेती में कीटनाशकों और कवकनाशियों के अत्यधिक प्रयोग से मिट्टी की उर्वरता कम हो रही है और मानव स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ रहा है। जैविक नियंत्रण एक ऐसी तकनीक है जिसमें प्रकृति के ही मित्र सूक्ष्मजीवों का उपयोग शत्रु सूक्ष्मजीवों को नष्ट करने के लिए किया जाता है।

जैविक नियंत्रण कैसे काम करता है? (कार्यप्रणाली)

जैविक नियंत्रण मुख्य रूप से चार तरीकों से काम करता है

प्रतियोगिता: मित्र सूक्ष्मजीव (जैसे ट्राइकोडर्मा) पोषक तत्वों और स्थान के लिए हानिकारक रोगाणुओं से मुकाबला करते हैं और उन्हें बढ़ने नहीं देते।

प्रतिजीविता: कुछ सूक्ष्मजीव ऐसे एंटीबायोटिक पदार्थ छोड़ते हैं जो रोगों को फैलाने वाले बैक्टीरिया या कवक को मार देते हैं।

परजीविता: इसमें एक सूक्ष्मजीव सीधे दूसरे हानिकारक सूक्ष्मजीव के शरीर पर हमला करके उसे खा जाता है।

प्रेरित प्रतिरोध: मित्र सूक्ष्मजीव पौधे की अपनी प्रतिरक्षा प्रणाली को सक्रिय कर देते हैं, जिससे पौधा रोगों से लड़ने में सक्षम हो जाता है।

प्रमुख जैविक नियंत्रण एजेंट जैविक नियंत्रण में सबसे अधिक उपयोग किए जाने वाले जीव निम्नलिखित हैं

एजेंट का नाम	प्रकार	किसके लिए उपयोगी
ट्राइकोडर्मा	कवक	जड़ सड़न, विल्ट (उकठा रोग) और मिट्टी से होने वाली बीमारियाँ।
स्यूडोमोनास	बैक्टीरिया	झुलसा रोग और जीवाणु जनित रोगों के लिए।
बैसिलस थुरिंजिएंसिस	बैक्टीरिया	कीटों और इल्लियों के नियंत्रण के लिए।
माइकोर्राइजा	कवक	पौधों की जड़ों को मजबूती देने और पोषक तत्व सोखने के लिए।

जैविक नियंत्रण के लाभ

पर्यावरण के अनुकूल: इससे जल, वायु और मिट्टी प्रदूषित नहीं होते।

किफायती: रसायनों की तुलना में यह विधि सस्ती पड़ती है।

लंबे समय तक प्रभाव: एक बार स्थापित होने पर ये मित्र जीव मिट्टी में खुद को बढ़ाते रहते हैं।

सुरक्षित उत्पाद: फसल में जहरीले अवशेष नहीं बचते, जिससे फल और सब्जियां स्वास्थ्यवर्धक होती हैं।

सीमाएं

धीमी प्रक्रिया: रसायनों की तरह यह तुरंत परिणाम नहीं दिखाता।

पर्यावरण पर निर्भरता: अत्यधिक गर्मी या सूखे में सूक्ष्मजीव जीवित नहीं रह पाते।

विशिष्टता: एक विशेष मित्र जीव केवल खास तरह के रोगों पर ही असर करता है।

ट्राइकोडर्मा को खेत पर तैयार करने की विधि

इसे 'ऑन-फार्म मास मल्टीप्लिकेशन' कहते हैं। इसका उद्देश्य बाजार से लाए गए थोड़े से पाउडर से भारी मात्रा में जैविक दवा तैयार करना है।

आवश्यक सामग्री

अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद: 100 किलो (खाद नमी वाली होनी चाहिए)।

ट्राइकोडर्मा पाउडर: 1 से 2 किलो (बाजार से लाया हुआ)।

गुड़: 500 ग्राम (सूक्ष्मजीवों के भोजन के लिए)।

पानी: आवश्यकतानुसार (नमी बनाए रखने के लिए)।

जूट की बोरी या तिरपाल: ढकने के लिए।

बनाने की प्रक्रिया

1.जगह का चुनाव: एक छायादार जगह चुनें (पेड़ के नीचे या छप्पर के नीचे)। सीधी धूप सूक्ष्मजीवों को मार सकती है।

2.खाद का ढेर बनाना: 100 किलो गोबर की खाद का एक ढेर बना लें। ध्यान रहे खाद पूरी तरह सड़ी हुई हो (काली और गंधहीन)।

3.मिश्रण तैयार करना: गुड़ को पानी में घोल लें। अब इस गुड़ के पानी में 1-2 किलो ट्राइकोडर्मा पाउडर मिला दें।

4.मिश्रण को मिलाना: इस घोल को गोबर की खाद के ढेर पर छिड़कें और फावड़े की मदद से अच्छी तरह मिला दें ताकि ट्राइकोडर्मा पूरी खाद में फैल जाए।

5. नमी बनाए रखना: ढेर में लगभग 20-30: नमी होनी चाहिए। यदि आप मुट्ठी में खाद दबाएं, तो लड्डू बन जाए लेकिन पानी न टपके।

ढकना: इस ढेर को जूट की बोरी (टाट) से ढक दें।

इंतजार (7 से 10 दिन): हर 2-3 दिन में ढेर को एक बार पलटें और यदि जरूरत हो तो हल्का पानी छिड़कें। 7-10 दिनों के बाद, आप देखेंगे कि पूरी खाद पर हरे या सफेद रंग की मखमली परत जम गई है। यह इस बात का संकेत है कि ट्राइकोडर्मा पूरे ढेर में फैल चुका है।

प्रयोग कैसे करें?

अब यह 100 किलो खाद साधारण खाद नहीं, बल्कि 'सुपर चार्ज्ड जैविक दवा' बन चुकी है।

बुवाई के समय: खेत की आखिरी जुताई के समय इस 100 किलो तैयार मिश्रण को प्रति एकड़ के हिसाब से पूरे खेत में बिखेर दें।

फसल के दौरान: यदि खड़ी फसल में रोग दिखे, तो इसे पौधों की जड़ों के पास डालकर हल्की सिंचाई कर दें।

01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

✍आर. एल. मीणा, महावीर नोगिया
✍बृजेश यादव, लाल चन्द मालव
✍अभिषेक जांगिड़, आर.एस. मीणा, मुकेश डांगी
भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, क्षेत्रीय केन्द्र, उदयपुर-313001 (राजस्थान)

खेती में रासायनिक उर्वरकों के अंधाधुन प्रयोग को कैसे कम करें

कृषि विशेषज्ञों के अनुसार, रासायनिक खादों का अत्यधिक उपयोग मिट्टी में रहने वाले सूक्ष्मजीवों पर नकारात्मक प्रभाव डाल रहा है, जिससे उनकी संख्या घट रही है. ये सूक्ष्मजीव मिट्टी में पोषक तत्वों का निर्माण और संचारण करने में सहायक होते हैं।

रासायनिक खाद के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी की सेहत पर संकट: रासायनिक उर्वरकों के बढ़ते उपयोग के चलते मिट्टी की उर्वरक क्षमता में गिरावट देखी जा रही है। इससे कृषि कार्यों में बाधाएं उत्पन्न हो रही हैं और किसानों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। रासायनिक उर्वरक और कीटनाशक पर किसान सालाना 30 से 40 हजार रुपए खर्च कर रहे हैं. हालांकि, इनका अत्यधिक उपयोग न केवल मिट्टी की उर्वरता को कम कर रहा है, बल्कि यह मानव स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है और कई बीमारियों का कारण बन रहा है. उन्होंने किसानों से रासायनिक खाद की बजाय ओर्गेनिक खाद को अपनाने की अपील की, ताकि मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की उपस्थिति बनी रहे जो पोषक तत्वों को बनाए रखने में सहायक हैं।

मिट्टी के सूक्ष्मजीवों और पोषक तत्वों पर रासायनिक खाद का दुष्प्रभाव: कृषि विशेषज्ञों के अनुसार, रासायनिक खादों का अत्यधिक उपयोग मिट्टी में रहने वाले सूक्ष्मजीवों पर नकारात्मक प्रभाव डाल रहा है, जिससे उनकी संख्या घट रही है। ये सूक्ष्मजीव मिट्टी में पोषक तत्वों का निर्माण और संचारण करने में सहायक होते हैं, लेकिन रासायनिक खादों के कारण उनकी संख्या कम हो रही है, जिससे मिट्टी की उर्वरता पर विपरीत असर हो रहा हैं।

खेती में रासायनिक उर्वरकों के अंधाधुंध प्रयोग को कम करना आज की आवश्यकता है, क्योंकि इससे मिट्टी की उर्वरता घटती है, जल स्रोत प्रदूषित होते हैं और स्वास्थ्य पर भी असर पड़ता है। **इसे कम करने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाए जा सकते हैं:-**

1. जैविक खादों का उपयोग बढ़ाएं

* गोबर की खाद, कंपोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट जैसे प्राकृतिक खाद का प्रयोग करें।
* ये मिट्टी की गुणवत्ता सुधारते हैं और लंबे समय तक फसल को पोषण देते हैं।

2. हरी खाद का प्रयोग करें

* हरी खाद के लिए प्रमुख फसलें सनई (सनहेम्प), ढेंचा, ग्वार, मूंग, उड़द, और लोबिया हैं, आदि को खेत में उगाकर मिट्टी में मिला दें।
* इससे नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ती है और मिट्टी उपजाऊ बनती है।

3. मृदा परीक्षण कराएं

* खेत की मिट्टी की जांच कराएं ताकि केवल आवश्यक उर्वरक ही डाले जाएं।
* इससे अंधाधुंध प्रयोग रुकेगा और लागत भी घटेगी।

4. फसल चक्र अपनाएं

* एक ही फसल बार-बार लगाने की बजाय फसल बदलते रहें।
* इससे मिट्टी की एकतरफा पोषक तत्वों की कमी नहीं होती।

5. जैव उर्वरकों का इस्तेमाल करें

* राइजोबियम (वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करके पौधों को उपलब्ध कराता है), एजोटोबैक्टर (नाइट्रोजन स्थिरीकरण करता है और पौधों की जड़ वृद्धि में सहायक है), फोस्फेट सोलूबिलाइजिंग बैक्टीरिया (पी.एस.बी., मिट्टी में बंद फोस्फेट को घुलनशील बनाकर पौधों को उपलब्ध कराता है) जैसे जैव उर्वरक फसलों को पोषण देते हैं और मिट्टी को नुकसान नहीं पहुँचाते।

6. समेकित पोषक प्रबंधन अपनाएं

* रासायनिक, जैविक और जैव उर्वरकों का संतुलित उपयोग करें।
* इससे उपज भी बनी रहती है और मिट्टी को भी नुकसान नहीं होता।

7. किसानों को प्रशिक्षण और जागरूकता दें

* पंचायत स्तर पर कार्यशालाएँ, कृषि मेले, मोबाइल ऐप्स और किसान हेल्पलाइन के माध्यम से किसानों को सही जानकारी दी जाए।

8. सरकार द्वारा प्रोत्साहन योजनाएं

* जैविक खेती करने वाले किसानों को सब्सिडी, प्रमाणन, और बाजार तक पहुंच दी जाए।

12/2025-26

कृषि विस्तार सेवाओं में नवाचार और चुनौतियां

लक्ष्मी मीणा पी.एच.डी. स्कॉलर, विस्तार शिक्षा विभाग, एम.पी.यू.ए.टी., उदयपुर (राजस्थान)

सरजीत यादव पी.एच.डी. स्कॉलर, विस्तार शिक्षा विभाग, एम.पी.यू.ए.टी., उदयपुर (राजस्थान)

देवेंद्र कुमार मीणा सहायक प्राध्यापक, कृषि विज्ञान केंद्र, दौसा, श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जयपुर, (राजस्थान)

परिचय

कृषि देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ मानी जाती है। आज भी देश की लगभग आधी जनसंख्या अपनी आजीविका के लिए कृषि एवं उससे संबंधित गतिविधियों पर निर्भर करती है। समय के साथ कृषि क्षेत्र में नई तकनीकों, अनुसंधान परिणामों और नीतियों का विकास हो रहा है, लेकिन इनका वास्तविक लाभ किसानों तक तभी पहुँच सकता है जब कृषि विस्तार सेवाएँ प्रभावी रूप से कार्य करें। कृषि विस्तार सेवाएँ अनुसंधान संस्थानों और किसानों के बीच एक प्रभावी माध्यम का कार्य करती हैं। र्तमान समय में जहाँ एक ओर कृषि विस्तार सेवाओं में कई नए और उपयोगी नवाचार देखने को मिल रहे हैं, वहीं दूसरी ओर इनके समक्ष अनेक व्यावहारिक चुनौतियाँ भी उभरकर सामने आ रही हैं।

कृषि विस्तार सेवाओं का महत्व

कृषि विस्तार सेवाओं का मुख्य उद्देश्य किसानों तक नवीन कृषि तकनीकों, उन्नत बीजों, फसल प्रबंधन पद्धतियों, पशुपालन, कृषि यंत्रीकरण, बाजार प्रबंधन एवं सरकारी योजनाओं से संबंधित जानकारी पहुँचाना है। परंपरागत रूप से कृषि विस्तार सेवाएँ प्रशिक्षण कार्यक्रमों, खेत पर किए जाने वाले प्रदर्शनों, गोष्ठियों और प्रत्यक्ष किसान-संपर्क के माध्यम से किसानों तक पहुँचाई जाती हैं। इन सेवाओं के माध्यम से किसानों में जागरूकता बढ़ती है, कृषि उत्पादन में सुधार होता है और उनकी आय बढ़ाने में सहायता मिलती है।

कृषि विस्तार में उभरते नवाचार

पिछले कुछ वर्षों में कृषि विस्तार सेवाओं के स्वरूप में उल्लेखनीय बदलाव देखने को मिले हैं। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के आने से विस्तार कार्य अधिक व्यापक, तेज और पहले से कहीं अधिक प्रभावी बन गए हैं।

* डिजिटल और मोबाइल आधारित सेवाएँ आज विस्तार सेवाओं का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुकी हैं। मोबाइल फोन, एसएमएस, व्हाट्सएप, मोबाइल ऐप्स और कॉल सेंटरों के माध्यम से किसानों को मौसम की स्थिति, फसल रोग, कीट प्रबंधन तथा बाजार भाव की जानकारी समय पर मिल रही है।
* किसान कॉल सेंटर, ई-नाम, किसान सुविधा पोर्टल और राज्य स्तरीय कृषि एप्स जैसे प्रयासों ने किसानों और विस्तार तंत्र के बीच दूरी को काफी हद तक कम किया है।

* भागीदारी आधारित विस्तार दृष्टिकोण आज कृषि विस्तार सेवाओं में एक महत्वपूर्ण और प्रभावी नवाचार के रूप में उभरकर सामने आया है। किसान समूहों, स्वयं सहायता समूहों और किसान उत्पादक संगठनों (FPOs) के माध्यम से सामूहिक सीख और निर्णय को बढ़ावा दिया जा रहा है, जिससे किसानों में आत्मनिर्भरता के साथ-साथ नेतृत्व क्षमता भी विकसित हो रही है।
* निजी क्षेत्र और गैर-सरकारी संगठनों की बढ़ती भागीदारी ने कृषि विस्तार सेवाओं को नई दिशा प्रदान की है। कृषि इनपुट कंपनियाँ, स्टार्टअप्स और विभिन्न एनजीओ अब किसानों को तकनीकी मार्गदर्शन के साथ-साथ बाजार से जुड़ी व्यावहारिक और उपयोगी सलाह भी प्रदान कर रहे हैं।

कृषि विस्तार सेवाओं में प्रमुख चुनौतियाँ

जहाँ एक ओर इन नवाचारों ने कृषि विस्तार सेवाओं को सशक्त बनाया है, वहीं दूसरी ओर कई गंभीर चुनौतियाँ भी हैं, जो इनकी प्रभावशीलता को सीमित करती हैं।

* मानव संसाधन की कमी एक बड़ी समस्या बनी हुई है। कृषि विभागों में विस्तार कर्मियों के अनेक पद रिक्त हैं, जिसके कारण उपलब्ध कर्मचारियों पर अत्यधिक कार्यभार पड़ता है। इसका सीधा प्रभाव किसानों के साथ होने वाले व्यक्तिगत संपर्क पर पड़ता है।
* डिजिटल विभाजन भी एक बड़ी चुनौती बनकर सामने आया है। ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी इंटरनेट कनेक्टिविटी, नियमित बिजली आपूर्ति और स्मार्टफोन की उपलब्धता समान नहीं है, जिसके कारण विशेष रूप से वृद्ध, अल्पशिक्षित और छोटे किसान डिजिटल सेवाओं का पूरा लाभ नहीं उठा पाते।
* कम शिक्षा स्तर और जागरूकता की कमी के कारण कई किसान नई तकनीकों को अपनाने से हिचकिचाते हैं। परंपरागत सोच, जोखिम उठाने का डर और सीमित संसाधन अक्सर नवाचारों को अपनाने के मार्ग में बाधा बन जाते हैं।
* स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप जानकारी और सामग्री की कमी भी कृषि विस्तार सेवाओं की प्रभावशीलता को प्रभावित करती है। अक्सर किसानों को प्रदान की जाने वाली जानकारी स्थानीय जलवायु, मिट्टी की प्रकृति और सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप नहीं होती।

इसके अतिरिक्त, वित्तीय और संरचनात्मक सीमाएँ जैसे सीमित बजट, परिवहन सुविधाओं का अभाव और पर्याप्त प्रशिक्षण संसाधनों की कमी भी कृषि विस्तार कार्यों को प्रभावित करती हैं।

नवाचार और चुनौतियों के बीच संतुलन की आवश्यकता

कृषि विस्तार सेवाओं को अधिक प्रभावी बनाने के लिए नवाचारों और चुनौतियों के बीच संतुलन स्थापित करना अत्यंत आवश्यक है। केवल तकनीक उपलब्ध करा देना ही काफी नहीं है, बल्कि किसानों की क्षमता बढ़ाना, उन्हें नियमित प्रशिक्षण देना और उनका विश्वास हासिल करना भी उतना ही आवश्यक है। क्षमता निर्माण कार्यक्रमों के जरिए किसानों और विस्तार कर्मियों–दोनों को डिजिटल रूप से सक्षम बनाना जरूरी है। इसके साथ ही स्थानीय भाषा में सरल, व्यावहारिक और उपयोगी जानकारी उपलब्ध कराना भी बेहद आवश्यक है। कृषि विस्तार सेवाओं में युवाओं और महिलाओं की भागीदारी को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। ग्रामीण युवा डिजिटल तकनीकों को तेजी से अपनाते हैं और परिवर्तन को आगे बढ़ाने में प्रभावी भूमिका निभा सकते हैं। स्थानीय संस्थानों, पंचायतों और सामुदायिक संगठनों की भूमिका को सशक्त बनाकर कृषि विस्तार सेवाओं को जमीनी स्तर तक अधिक प्रभावी रूप से पहुँचाया जा सकता है। साथ ही, किसान-से-किसान सीखने की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करना भी एक प्रभावी और सफल रणनीति साबित हो सकती है।

निष्कर्ष

आज के बदलते कृषि परिदृश्य में कृषि विस्तार सेवाओं की भूमिका पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। नवाचारों ने इन सेवाओं को नई ऊर्जा और दिशा दी है, लेकिन चुनौतियाँ अब भी बनी हुई हैं। आवश्यकता इस बात की है कि तकनीकी नवाचारों को मानवीय संवेदनाओं और व्यावहारिक दृष्टिकोण के साथ जोड़ा जाए। जब कृषि विस्तार सेवाएँ किसानों की वास्तविक जरूरतों को समझकर सहभागी, समावेशी और व्यावहारिक ढंग से कार्य करेंगी, तभी कृषि विकास का लक्ष्य पूरी तरह साकार हो पाएगा। वास्तव में, कृषि विस्तार सेवाओं को सशक्त बनाना ही टिकाऊ, लाभकारी और समृद्ध भारतीय कृषि की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कुंजी है।

उच्च वायु गुणवत्ता सूचकांक (ए.क्यू.आई.) का पालतू पशुओं एवं वन्यजीवों पर प्रभाव

डॉ. असद खान पी.एच.डी. शोधार्थी, पशु आनुवांशिकी एवं प्रजनन प्रभाग, भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल, (हरियाणा)

डॉ. शुभम नायक पी.एच.डी. शोधार्थी, पशु प्रजनन, मादा रोग एवं प्रसूति विज्ञान प्रभाग, भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल, (हरियाणा)

डॉ. शशांक विश्वकर्मा पशु मादा रोग एवं प्रसूति विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, ना.दे.प.चि.वि.वि., जबलपुर (म.प्र.)

डॉ. मारिया खान पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, ना.दे.प.चि.वि.वि., जबलपुर (म.प्र.)

प्रत्येक वर्ष सर्दियों में जब देश के कई शहरों में वायु गुणवत्ता सूचकांक (ए.क्यू.आई.) संकट-सूचक स्तरों तक पहुँच जाता है तब जन-स्वास्थ्य पर इसके दुष्प्रभावों की चर्चा अवश्य होती है लेकिन विभिन्न पशु प्रजातियाँ जो हमारे साथ इसी हवा में साँस लेती हैं वे भी न केवल समान रूप से इस प्रदूषण से प्रभावित होती हैं बल्कि कई मामलों में मनुष्य से भी अधिक असुरक्षित हैं। अंतर सिर्फ इतना है कि वे मास्क नहीं पहन सकते, घर में बंद नहीं रह सकते और न ही एयर प्यूरीफायर का उपयोग कर सकते हैं। दुर्भाग्य यह है कि राष्ट्रीय पर्यावरणीय विमर्श में इनके संकट का स्थान लगभग न के बराबर है। गाय, भैंस, बकरी, भेड़ और कुक्कुट जैसे पालतू जानवर अपने जीवन का अधिकांश समय खुले में बिताते हैं जहाँ पी.एम. 2.5, पी.एम.10, सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड और अमोनिया जैसी गैसें लगातार उनके फेफड़ों में जाती रहती हैं। यहाँ तक कि घरों में रहने वाले पालतू जानवर भी पूरी तरह सुरक्षित नहीं हैं। सूक्ष्म कण खिड़कियों और रोशनदान के रास्ते आसानी से घरों में प्रवेश कर जाते हैं। जब ए.क्यू.आई. 400 से ऊपर पहुँचता है जिसे 'गंभीर श्रेणी' माना जाता है तब पशुओं में लगातार श्वसन तनाव देखा जाता है। दिल्ली और उत्तर भारत के कई प्रदूषित शहरों से प्राप्त अध्ययन बताते हैं कि डेयरी पशुओं में खाँसी, नाक से स्राव, चारा खाने में कमी और दूध उत्पादन में गिरावट आम हो जाती है। फसल अवशेषों को जलाने से उत्पन्न राख और धूल चारे तथा पानी पर जम जाती है जिससे खतरनाक पदार्थ शरीर में खाने के माध्यम से भी पहुँचते हैं। लंबे समय तक संपर्क रहने पर फेफड़ों की क्षमता घट जाती है और रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर होने लगती है।

वायु प्रदूषण का असर सिर्फ पशुओं के स्वास्थ्य पर नहीं बल्कि देश की पशुपालन अर्थव्यवस्था पर भी पड़ता है। डेयरी पशुओं में उत्पादकता और प्रजनन क्षमता में गिरावट सीधे पशुपालक की आय को प्रभावित करती है। वायुप्रदूषण के फलस्वरूप, वायुमंडल में उपस्थित भारी धातुएँ जैसे सीसा और कैडमियम, पशुओं के दूध और मांस में जमा हो सकती हैं जो खाद्य सुरक्षा के लिए गंभीर जोखिम है। इस संकट हेतु कुक्कुट पालन उद्योग विशेष रूप से संवेदनशील है। अमोनिया और धूलकणों की अधिकता से अंडा उत्पादन कम होता है, वृद्धि दर घटती है और मृत्यु दर बढ़ जाती है। ग्रामीण और उपनगरीय क्षेत्रों में फसलों की पराली जलाने से ए.क्यू.आई. अचानक बढ़ जाता है और यही धुआँ पशु आश्रयों और डेयरी शेडों पर भी जम जाता है। दुर्भाग्य से, पशु चिकित्सकों द्वारा प्रदूषण संबंधी रोगों की पहचान अभी भी सीमित है। किसान अक्सर इन लक्षणों को पोषण या गर्मी के तनाव से जोड़ देते हैं और वायु गुणवत्ता को कारण नहीं मानते।

शहरी पालतू पशुओं के मालिक यह मान लेते हैं कि उनका पशु घर के भीतर सुरक्षित है पर वास्तविकता यह है कि गंभीर प्रदूषण के दिनों में घर की हवा भी बाहर जैसी ही हो जाती है। कुत्तों और बिल्लियों की श्वसन दर मनुष्यों की तुलना में अधिक होती है इसलिए वे वजन के अनुपात में अधिक प्रदूषक कण अंदर लेते हैं। विशेषकर छोटे नथुनों वाली नस्लें जैसे पग एवं बुलडॉग आदि जल्दी सांस फूलने, खाँसी, आँखों में जलन और एलर्जिक ब्रोंकाइटिस से ग्रस्त हो जाती हैं। बार-बार संपर्क से इन पालतु पशुओं में फेफड़ों के रोग और हृदय संबंधी समस्याएँ विकसित हो सकती हैं। वाहनों के धुएँ और औद्योगिक कण जानवरों के फर पर भी जम जाते हैं, जिन्हें वे खुद को साफ करते समय निगल लेते हैं। महानगरों के पशु चिकित्सक उच्च ए.क्यू.आई. वाले महीनों में पालतू पशुओं में श्वसन रोगों के मामलों में तेजी से बढ़ोतरी की पुष्टि करते हैं।

औद्योगिक क्षेत्रों, खनन पट्टों और राजमार्गों के आसपास बसे जंगलों के वन्यजीव वायु प्रदूषण के सबसे अदृश्य शिकार हैं। पक्षी, चमगादड़ और छोटे स्तनधारी जिनकी श्वसन दक्षता अत्यधिक होती है, सबसे पहले प्रभावित होते हैं। स्मॉग से ढके शहरी हरित क्षेत्रों में किए गए शोध बताते हैं कि पक्षियों की विविधता, प्रजनन सफलता और आवाज के माध्यम से संचार क्षमता पर प्रदूषण का विपरीत प्रभाव पड़ता है। पत्तियों की रासायनिक संरचना बदलने से शाकाहारी जीवों का पोषण चक्र बाधित होता है। भारी धातुओं का जमाव मिट्टी और वनस्पति को प्रभावित करता है जिसका असर हिरणों और अन्य शाकाहारियों पर पड़ता है और अप्रत्यक्ष रूप से बाघ, तेंदुए और भेड़ियों जैसे मांसाहारियों पर भी पहुंचता है। वन्यजीव संरक्षण में वायु प्रदूषण को अभी भी गंभीर खतरे के रूप में नहीं देखा जाता, यह हमारी नीतिगत उपेक्षा का स्पष्ट प्रमाण है।

भारत में वायु गुणवत्ता निगरानी और उत्सर्जन नियंत्रण के लिए कई कदम उठाए गए हैं लेकिन पशु स्वास्थ्य और वन्यजीव पर इसके दुष्प्रभाव को अब भी प्रणालीगत रूप से शामिल नहीं किया गया है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और राज्य प्रदूषण बोर्डों में पशु चिकित्सकों या वन्यजीव विशेषज्ञों की भागीदारी बेहद सीमित है। पशुपालन और डेयरी मंत्रालय द्वारा पशुओं के लिए ए.क्यू.आई. आधारित स्वास्थ्य सलाह जारी नहीं की जाती जबकि मानव स्वास्थ्य के लिए नियमित एडवाइजरी जारी होते हैं। अब समय आ गया है कि पशु स्वास्थ्य निगरानी को राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता कार्यक्रम का हिस्सा बनाया जाए। डेयरी क्लस्टरों, पोल्ट्री फार्मों और चिड़ियाघरों के आसपास निगरानी स्टेशन स्थापित किए जा सकते हैं। पशु चिकित्सकों के प्रशिक्षण में पर्यावरणीय विषविज्ञान (एनविरोनमेंट टॉक्सिकॉलोजी) को शामिल करना चाहिए। शहरी प्रशासन को 'पशु अनुकूल' प्रदूषण नियंत्रण उपाय जैसे धूल निरोधी डेयरी शेड, धुआँ मुक्त चारा भंडारण आदि को बढ़ावा देना चाहिए। पशु पर्यावरणीय असंतुलन के प्रारंभिक संकेतक होते हैं। जब वे ठीक से खाना छोड़ देते हैं, खाँसते हैं या असामान्य व्यवहार करते हैं तो यह आने वाले बड़े पर्यावरणीय संकट का संकेत भी होता है। हमें उन्हें पर्यावरणीय नीति का 'दूसरा लाभार्थी' नहीं बल्कि समान अधिकार वाले सहनिवासी के रूप में देखना होगा। जैसे ही देश फिर से स्मॉग के मौसम में प्रवेश करता है हमारा दृष्टिकोण केवल मानवद्केंद्रित नहीं होना चाहिए। वायु प्रदूषण एक सार्वजनिक स्वास्थ्य संकट के साथ-साथ पशु कल्याण, कृषि उत्पादकता और जैव विविधता का भी संकट है। समग्र दृष्टिकोण अपनाकर ही हम मनुष्यों के साथ-साथ उन सभी प्राणियों की सुरक्षा कर सकते हैं जो हमारे साथ इसी हवा में साँस लेते हैं।

गेहूँ के प्रमुख कीटों एवं रोगों का समेकित प्रबंधन

डॉ. सुनील कुमार मंडल (सहायक प्राध्यापक)
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, झंझारपुर, मधुवनी, (बिहार)

डॉ. सुरेन्द्र प्रसाद कीट विज्ञान विभाग,
स्नातकोत्तर कृषि महाविद्यालय, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
केन्द्रीय कृषि महाविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर (बिहार)

परिचय: गेहूँ रबी मौसम में उगायी जाने वाली भारत की प्रमुख खाद्यान फसल है। देश के हरित क्रांति में खाद्यान के उत्पादन को बढ़ाने में गेहूँ फसल की मुख्य भूमिका रही है। गेहूँ के कुल उत्पादन का लगभग 90% से भी अधिक भाग देश के पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, उत्तरांचल के मैदानी भाग, राजस्थान व मध्य प्रदेश से प्राप्त होता है, परन्तु इन क्षेत्रों के अर्न्तगत गेहूँ की औसत उपज में अंतर देखा गया है, जबकि उत्तरप्रदेश में गेहुँ का 90% क्षेत्र सिंचित है, लेकिन उत्पादकता 25.96 क्विं. प्रति हे. है। अग्रणी प्रदेशों जैसे पंजाब और हरियाणा की उत्पादकता क्रमशः 44 और 38 क्विंटल प्रति हैक्टर है। लेकिन यदि किसान उन्नत बीज, समय से सिंचाई, खरपतवार, कीड़ों एवं बीमारियां का नियंत्रण तथा उर्वरकों का संतुलित उपयोग वैज्ञानिक ढंग से करें तो गेहूँ की औसत उपज 40-50 क्विंटल प्रति हैक्टर तक आसानी से प्राप्त की जा सकती है और केन्द्र सरकार द्वारा वर्ष 2025-26 तक लगभग119 मैट्रिक टन गेहूँ उत्पादन का निर्धारित लक्ष्य आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

प्रमुख कीट

दीमक: ये मिट्टी में रहने वाले उजले रंग की चींटी की तरह छोटे आकार के कीट है। ये जमीन में सुरंगें बनाती है और गेहूँ के छोटे-छोटे जड़ों को खाकर नुकसान पहुँचाते हैं। प्रकोप अधिक होने पर ये तने को भी खा सकती हैं। अन्त में प्रभावित पौधे मर जाते हैं। आक्रान्त पौधें को उखाड़ने पर तने में मिट्टी लगी पायी जाती है।

गुजिया वीविल: यह कीट भूरे मटमैले रंग का होता है, जो सूखी जमीन में ढेले एवं दरारों में छीपा रहता है। सर्दियों में इसका प्रकोप अधिक होता है। यह कीट उग रहे पौधों को जमीन की सतह के साथ काट कर हानि पहुँचता है और अधिक प्रकोप होने पर फसल पूर्णतया नष्ट हो जाती है।

समेकित प्रबन्धन: 1. जिन क्षेत्रों में दीमक/गुजिया वीविल का प्रकोप हमेशा होता है तो खेत की ग्रीष्मकालीन जुताई करना चाहिए। 2. खेत को खरपतवार से मुक्त रखना चाहिए । 3. हमेशा सड़ी गोबर के खाद का ही व्यवहार करना चाहिए । 4. बुवाई से पूर्व दीमक के नियंत्रण हेतु क्लोरपाइरीफास 20 ईसी की 5 मिली मात्रा प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करना चाहिए । 5. ब्यूवेरिया बैसियाना की 2.5 किलोग्राम प्रति हेक्टैर की दर से 60-70 किलोग्राम सड़ी गोबर की खाद में मिलाकर हल्के पानी का छिंटा देकर 8-10 दिन तक छाया में रखने के उपरान्त बुवाई के पूर्व आखरी जुताई पर भूमि में मिला देने से दीमक सहित भूमि जनित कीटों का नियंत्रण हो जाता है। 6. खड़ी फसल में दीमक/गुजिया वीविल के नियंत्रण हेतु क्लोरपाइरीफॉस 20 ईसी का 2.5 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से सिंचाई के पानी के साथ प्रयोग करना चाहिए अथवा इस दवा का 2.5 मिली लीटर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। 7. क्लोरपाईरीफॉस 1.5 प्रतिशत धूल का 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई से पूर्व खेत की अंतिम जुताई के समय मिट्टी में व्यवहार करना चाहिए। तना वेधकः कभी-कभी गेहूँ में तना वेधक कीटों का भी प्रकोप देखा गया है। इस कीट की मादा पत्तियों के नीचले सतह पर अंडा देती है। अन्डे से निकले कैटरपीलर (लर्वा) तने में घुसकर उसे काटने लगता है। परिणामतः कभी-कभी सुखी वाली खेतों में दिखाई देता है।

प्रबन्धन: 1. अण्ड समूहों को एकत्रित कर नष्ट कर देना चाहिए। 2. कॉरटाप हाइड्रोक्लोराईड (50 एसपी) 1.0 ग्राम/लीटर पानी या क्वीनालफास (25 ईसी) या प्रोफेनोफास (50 ईसी) 1.25 मिली प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर फसलों में छिड़काव करना चाहिए।

माहू: यह कीट काले-हरे रंग के पंखयुक्त एवं पंखविहीन होते हैं। इसके शिशु एवं वयस्क दोनो ही पत्तियों एवं हरी बालियों से रस चूसकर हानि पहुचाते है। माहू मधुश्राव भी करते हैं जिसपर काली फफूंद उग जाती है जिसके कारण प्रकाश संश्लेषण में बाधा उत्पन्न होती है।

समेकित प्रबंन्धन: 1. फसल की बुआई समय पर करना चाहिए। 2. फसलों में लेडी वर्ड विटिल की संख्या पर्याप्त रहने पर कीटनाशक का छिड़काव नहीं करना चाहिए। 3. खेत में पीले रंग के टिन के चादरों पर चिपचिपा पदार्थ 5-6 प्रति हे. की दर से खेत में गाड़ देना चाहिए। पीलें रंग से माहू आकर्षित होंगें और इसमें चिपक कर मर जाएगें। 4. डाइमेथोएट (30 ईसी) 2 मिली प्रति लीटर पानी या फेनभेलरेट (20 ईसी) 1.0 मिली पानी का घोल बनाकर फसलों में छिड़काव करना चाहिए।

प्रमुख रोग:

1. गेरूई रोग: गेरूई काली, भूरे एवं पीले रंग की होती है। गेरूई की फफूंद के फफोले पत्तियों पर पड़ जाते है जो बाद में बिखर कर अन्य पत्तियों को प्रभावित करते है। काली गेरूई रोग तना और पत्तियों दोनों को प्रभावित करती है।

2. करनाल बन्ट: फफूंद के द्वारा होने वाला यह एक बीजजनित रोग है। समान्यतः खड़ी फसल में रोगग्रस्त पौधों को पहचानना सम्भव नहीं है। यह रोग दाना बनने के बाद ही दिखाई पड़ता है। रोगग्रस्त दानें आशिंक या पूर्णरूप से काले चूर्ण में परिवर्तित हो जाते हैं। एक पौधे की सभी बालियां तथा एक बाली के सभी दानें रोगग्रस्त नहीं होते हैं। एक वाली में कुछ दानें ही रोगग्रस्त होते है। रोगी दानें से सड़ी मछली जैसी कुछ गन्ध आती है।

3. कण्डुआ रोग: इस रोग में बालियों में दाने के स्थान पर फफूंद का काला धूल भर जाता है और कुछ समय बाद पूरी बाल समाप्त हो जाती है, केवल रेचीस (त्वीपे) फफूंद के बीजाणु हवा में झड़ने से स्वास्थ बाली भी आक्रांत हो जाती है। यह अन्तर बीजजनित रोग है।

4. पत्र अंगमारी (झुलसा रोग): प्रारम्भ में रोग के लक्षण, नीचे की पत्तियों पर गोलाकार या अंडाकार छोटे -छोटे पीले भूरे रंग के धब्बे के रूप में देखे जा सकते है। अनुकूल मौसम में ये घब्बों में मिलकर पत्तियों को झूलसा देते है। प्रभावित फसल आग से झुलसी हुई प्रतीत होती है। दानें सिकूड़ी हुई तथा वजन में हल्की हो जाती है।

5. सेहूं रोग (इयर काकिल): यह रोग सूत्रकृमि के द्वारा होता है। इस रोग में प्रभावित पौधों की पत्तियां मुड़ कर सिकुड़ जाती है। अक्रान्त पौधे वौने रह जाते हैं तथा उनमें स्वास्थ पौधे की अपेक्षा अधिक शाखायें निकलती है। रोगग्रस्त बालियां छोटी एवं फैली हुई होती है और इसमें काले रंग की गॉल (गाँठे) बन जाते है, जिसमें गेहूँ के दाने के बदले काले इलाइची के दाने के समान बीज बनते है।

समेकित प्रबंधन

1. बीज उपचार: 1. कण्डुआ एवं करनाल बन्ट रोगों के नियंत्रण हेतु कार्बेन्डाजीम (50 डब्लूपी) की 2.5 ग्राम या कार्बोक्सिन (75 डब्लूपी) 2.0 ग्राम या टेबुकोनाजोल (2डीएस) 1.0 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार कर बुवाई करनी चाहिए। 2. कण्डुआ रोग एवं बीजजनित रोगों के साथ -साथ प्रारंभिक भूमिजनित रोगों के नियंत्रण हेतु कार्बोक्सिन 57.5% डीएस+थीरम 37.5 प्रतिशत डब्लूएस की 3.0 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजशोधन कर बुवाई करना चाहिए। 3. सेहूं रोग के नियंत्रण हेतु बीज को कुछ समय के लिए 10% नमक के घोल में डुबोये (1 किलोग्राम नमक को 10 लीटर पानी में घोलकर) जिससे सेहूं रोग ग्रसित बीज हल्का होने के कारण तैरने लगता है। ऐसे सेहूं ग्रसित बीजों को निकालकर नष्ट कर देना चाहिए। नमक के घोल में डुबोये गये बीजों को बाद में साफ पानी से 2-3 बार धोकर सुखा लेने के पश्चात् बुवाई के काम में लाना चाहिए।

2. भूमि उपचार: 1. भूमिजनित एवं बीजजनित रोगों के नियंत्रण हेतु जैवफफूंदनाशी ट्राइकोडरमा बिरडी अथवा ट्राइकोडरमा हारजिएनम 2.5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से 60-75 किलोग्राम खाद में मिलाकर हल्के पानी का छींटा देकर 8-10 दिन तक छाया में रखने के उपरान्त बुवाई के पूर्व आखरी जुताई के समय भूमि में मिला देने से कण्डुआ, करनाल बण्ट आदि रोगों के प्रबन्धन में सहायता मिलती है ।

2. सेहूं रोग के नियंत्रण हेतु कार्बोफ्यूरॉन (3जी) 10-15 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से बुरकाव करना चाहिए।

3. पर्णीय उपचार (पर्णीय छिड़काव): 1. गेरूई एवं पत्ती धब्बा रोगों के नियंत्रण हेतु मैन्कोजैब (75 डब्लूपी) या थिरम (80 डब्लूपी) या जीनेब (75 डब्लूपी) का 2.0ग्राम या टेवुकोनाजोल (25.9 ईसी) का 1.0 मिली लीटर प्रति लीटर पानी की दर से धोल बनाकर फसल पर छिड़काव करना चाहिए। 2. गेरूई एवं करनाल बन्ट रोगों के नियंत्रण हेतु प्रोपीकोनाजोल (25 ईसी) 1.5 मिली लीटर प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर फसलों में छिड़काव करना चाहिए।

शस्य प्रबन्धन क्रियायें: 1. फसल चक्र अपनाना चाहिए 2. खेत को खरपतावार से मुक्त रखना चाहिए3. गीष्मकालीन गहरी जुताई करना चाहिए 4. संतुलित उर्वरकों का व्यवहार करना चाहिए 5. हमेशा रोगमुक्त एवं स्वस्थय बीज की ही वुबाई करना चाहिए 6. रोगरोधी किस्मों के प्रमाणित बीजों का ही बुवाई करना चाहिए।

प्रमुख चूहे: चूहे की दो-तीन प्रजातियाँ खेत में गेहूँ की खड़ी फसल को बहुत अधिक नुकसान पहुचाते है।

नियंत्रण के उपाय: चूहे की निगरानी एवं जिंक फास्फाईड (80 प्रतिशत) से नियंत्रण का सप्ताहिक कार्यक्रम निम्न उल्लेखित सामूहिक रूप से किया जाए तो अधिक सफलता मिलती है।

पहला दिन: खेत की निगरानी करें तथा जितने चूहे के बिल हो तो उसे बन्द करते हुए पहचान हेतु लकड़ी के डण्डे गाड़ दें।

दूसरा दिन: खेत में जाकर बिल की निगरानी करें जो बिल बन्द हो यहाँ से गढ़े हुए डण्डे को हटा दें। जहाँ पर बिल खुल गये हाँ यहाँ पर डण्डे गढ़े रहने दें। खुले बिल में एक भाग सरसों का तेल एवं 48 भाग भूने हुए दाने का बिना जहर का बना हुआ चारा बिल में रखें।

तीसरा दिन: बिल की पुनः निगरानी करें तथा बिना जहर का बना हुआ चारा पुनः बिल में रखें।

चौथा दिन: जिंक फास्फाइड (80 प्रतिशत) 1.0 ग्राम, सरसों का तेल अल्प मात्रा में एवं 48 ग्राम भुने हुए दाने में बनाये गये जहरीले चारे का प्रयोग करना चाहिए।

पाँचवा दिन: बिल की निगरानी करें तथा मरे हुए चूहों को जमीन में खोद कर दवा दें।

छठा दिन: बिल को पुनः बन्द कर दें तथा अगले दिन यदि बिल खुल जाये तो पुनः इस सप्ताहिक कार्यक्रम को पुनः अपनाये।

2. ब्रोमोडियोलोन: 0.005% के बने बनाये चारे की 10.0 ग्राम की मात्रा प्रत्येक जिन्दा बिल में रखना चाहिए। इस दवा से चूहा 3-4 बार खाने के बाद ही मरता है।

सब्जियों में पोस्ट-हार्वेस्ट हानियों का मूल्यांकन तथा भंडारण चरण में होने वाली हानियों का विश्लेषण

डॉ. दिनेश रजक, डॉ. विशाल कुमार
डॉ. देवेन्द्र कुमार
प्रसंस्करण एवं खाद्य अभियन्त्रिकी विभाग, कृषि अभियंत्रण एवं प्रौद्योगिकी महविद्यालय, डॉ. रा. प्र. कें. कृ. वि. पूसा, समस्तीपुर, (बिहार)

परिचय: भारत विश्व के प्रमुख सब्ज़ी उत्पादक देशों में से एक है, लेकिन इसके बावजूद यहाँ सब्ज़ियों में कटाई-पश्चात (Post-harvest) हानियाँ 20-40% तक पाई जाती हैं। सब्ज़ियाँ अत्यधिक नाशवान (Perishable) होने के कारण कटाई, परिवहन, भंडारण और विपणन के दौरान इनकी गुणवत्ता और मात्रा दोनों में कमी आती है। इन हानियों को कम करने के लिए इनका सही मूल्यांकन (Assessment) तथा विश्लेषण (Analysis) अत्यंत आवश्यक है।

1. **पोस्ट-हार्वेस्ट हानियों का महत्व:** सब्ज़ियों में कटाई-पश्चात हानियां न केवल किसानों की आय कम करती हैं, बल्कि उपभोक्ताओं तक गुणवत्तापूर्ण और सस्ती सब्ज़ियाँ पहुँचने में भी बाधा बनती हैं। इसके अलावा, यह देश की खाद्य सुरक्षा पर भी प्रभाव डालती हैं। इसलिए पोस्ट-हार्वेस्ट हानियों का वैज्ञानिक मूल्यांकन और उचित भंडारण तकनीकों का उपयोग इस समस्या को कम कर सकता है।

2. **पोस्ट-हार्वेस्ट हानियों का मूल्यांकन (Assessment of Post-Harvest Losses)Ñ-** सब्ज़ियों तथा अन्य कृषि उत्पादों में कटाई-पश्चात होने वाली हानियों को पहचानने, मापने और विश्लेषित करने की प्रक्रिया को पोस्ट-हार्वेस्ट हानि का मूल्यांकन (Assessment of Post-Harvest Losses) कहा जाता है। इसका उद्देश्य यह पता लगाना है कि उत्पादन से उपभोग तक की श्रृंखला में किस चरण पर कितनी और किस प्रकार की हानि होती है, ताकि उन्हें कम करने के लिए उचित तकनीकों का चयन किया जा सके।

(a) मूल्यांकन के उद्देश्य

1.हानि के प्रकार और स्तर का पता लगाना
2.हानियों के कारणों की पहचान
3.वैज्ञानिक प्रबंधन उपाय सुझाना
4.नीति निर्माण और आपूर्ति श्रृंखला सुधार हेतु आंकड़े उपलब्ध कराना

(b) मूल्यांकन के प्रमुख मानदंड

1.मात्रात्मक हानि (Quantitative Loss) * वजन में कमी * संख्या में कमी * शेल्फ-लाइफ कम होना

2.गुणवत्ता हानि (Qualitative Loss) * रंग, रूप व स्वाद में गिरावट * पोषक तत्वों की कमी * रोग व कीट संक्रमण

3.आर्थिक हानि (Economic Loss)

* बाज़ार मूल्य में कमी
* किसान और व्यापारी को आर्थिक नुकसान

(c) मूल्यांकन के प्रमुख चरण

* फसल कटाई
* ढुलाई व परिवहन
* बाजार में हैंडलिंग * भंडारण

खुदरा विक्रय: 3. भंडारण चरण में होने वाली हानियों का विश्लेषण:- सब्ज़ियाँ अत्यंत नाशवान (Perishable) होती हैं और कटाई के बाद इन्हें सुरक्षित रखने के लिए उचित भंडारण आवश्यक होता है। भंडारण चरण में वातावरण, तापमान, आर्द्रता, वेंटिलेशन, रोग-कीट तथा पैकिंग की वजह से कई प्रकार की हानियाँ होती हैं। इन हानियों का वैज्ञानिक विश्लेषण गुणवत्ता बनाए रखने, शेल्फ लाइफ बढ़ाने और आर्थिक नुकसान कम करने के लिए आवश्यक है। सब्ज़ियों का सही भंडारण उनकी शेल्फ-लाइफ बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गलत भंडारण से भारी क्षति हो सकती है। भंडारण हानियाँ मुख्यतः निम्न प्रकार की होती हैं:

(a) भौतिक / यांत्रिक हानियाँ (Physical Losses)

* वजन घटाव (Shrinkage)
* टूट-फूट या दबाव चोट

पानी की कमी के कारण मुरझाना-इनका मुख्य कारण होता है अनुचित पैकिंग, खराब वेंटिलेशन और अधिक तापमान में संग्रहण।

(b) शारीरिक / फिजियोलॉजिकल हानियाँ (Physiological Losses)

* उच्च तापमान से तेज श्वसन क्रिया
* एनजाइमेटिक ब्राउनिंग
* अधिक नमी से सड़न

इन हानियों से गुण और पोषक तत्वों का तेजी से ह्रास होता है।

(c) रोगजनित हानियाँ (Pathological Losses)

* fungal संक्रमण (Rhizopus, Penicillium आदि)
* बैक्टीरियल सॉफ्ट रॉट
* कीटों द्वारा क्षति

ये हानियाँ अधिकांशतः अस्वच्छ भंडारण और उच्च आर्द्रता के कारण होती हैं।

(d) भंडारण प्रबंधन से संबंधित हानियाँ

* अनुचित तापमान
* अधिक या कम आर्द्रता
* खराब वेंटिलेशन
* गैसों (CO_2, एथिलीन) का जमाव

सब्ज़ियों के प्रकार अनुसार भंडारण तापमान का वैज्ञानिक ज्ञान अत्यंत आवश्यक है।

4. **भंडारण हानियाँ कम करने के उपाय:** सब्ज़ियाँ अत्यधिक नाशवान होती हैं, इसलिए भंडारण के दौरान तापमान, आर्द्रता, वेंटिलेशन, रोग-कीट और अनुचित पैकिंग के कारण हानियाँ हो सकती हैं। इन हानियों को कम करने के लिए वैज्ञानिक और व्यावहारिक उपायों का पालन आवश्यक है।

(a) उचित तापमान और आर्द्रता नियंत्रण: - सब्ज़ियाँ अत्यधिक नाशवान (Perishable) होती हैं, इसलिए भंडारण के दौरान उनका ताज़ापन, गुणवत्ता और शेल्फ लाइफ बनाए रखने के लिए तापमान (Temperature) और आर्द्रता (Relative Humidity–RH) का वैज्ञानिक नियंत्रण आवश्यक होता है। तापमान और आर्द्रता का असंतुलन सड़न, सिकुड़न, पोषक तत्वों की कमी और रोगजनक वृद्धि का प्रमुख कारण बनता है।

* **पत्तेदार सब्ज़ियाँ:** 0-5°C
* **टमाटर:** 10-12°C
* **आलू:** 10-12°C
* **प्याज:** 25-30°C कम आर्द्रता में

(b) वैज्ञानिक भंडारण तकनीकें- सब्ज़ियों की शेल्फ लाइफ बढ़ाने, गुणवत्ता बनाए रखने तथा पोस्ट-हार्वेस्ट हानियों को कम करने के लिए वैज्ञानिक भंडारण तकनीकों का उपयोग आवश्यक है। पारंपरिक तरीकों की तुलना में ये तकनीकें तापमान, आर्द्रता, गैसों तथा वेंटिलेशन पर बेहतर नियंत्रण प्रदान करती हैं, जिससे सब्ज़ियाँ अधिक समय तक सुरक्षित रहती हैं।

कोल्ड स्टोरेज

* नियंत्रित वातावरण भंडारण (Controlled Atmosphere – CA)
* परिवर्तित वातावरण पैकिंग (Modified Atmosphere Packaging – MAP)
* वाष्पीकरणीय शीत भंडारण (Evaporative cooling storage)

(c) ग्रेडिंग, पैकिंग एवं स्वच्छता: - कटाई के बाद सब्ज़ियों की गुणवत्ता बनाए रखने, भंडारण हानियाँ कम करने तथा बाजार मूल्य बढ़ाने के लिए ग्रेडिंग (Grading), पैकिंग (Packaging) और स्वच्छता (Sanitation) अत्यंत महत्वपूर्ण चरण हैं। इन विधियों के माध्यम से सब्ज़ियाँ सुरक्षित रहती हैं, परिवहन में कम क्षति होती है और उपभोक्ता को बेहतर गुणवत्ता का उत्पाद मिलता है।

* क्षतिग्रस्त सब्ज़ियाँ अलग करना
* वायुवाहक (Ventilated) क्रेट्स व पैकेजिंग
* साफ-सफाई व फफूंदनाशक उपचार

5. **निष्कर्ष:** सब्ज़ियों में पोस्ट-हार्वेस्ट हानियाँ भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए गंभीर समस्या हैं। इन हानियों का सही मूल्यांकन करके और भंडारण तकनीकों में सुधार लाकर उत्पादन से उपभोग तक की शृंखला को अधिक कुशल बनाया जा सकता है। उन्नत तकनीकें, जागरूकता, प्रशिक्षण तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाकर इन हानियों को काफी हद तक कम किया जा सकता है। इससे न केवल किसानों की आय बढ़ेगी, बल्कि उपभोक्ताओं को गुणवत्तापूर्ण सब्ज़ियाँ भी उपलब्ध होंगी।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

मुख्य पोषक तत्व के रूप में पोटाश का फसलोत्पादन में भूमिका

आलोक कुमार जिला कृषि पदाधिकारी
कालीकान्त चौधरी उप परियोजना निदेशक आत्मा
रौशन कुमार उप परियोजना निदेशक (आत्मा)
प्रमोद कुमार तिवारी प्रखण्ड कृषि पदाधिकारी (आत्मा)
वैभव पाण्डेय प्रखण्ड कृषि पदाधिकारी सिवान सदर
मनीष पाण्डेय प्रखण्ड तकनीकी प्रबंधक, जिला कृषि कार्यालय सिवान कृषि विभाग (बिहार)

पोटाश को "गुणवत्ता पोषक तत्व" के रूप में परिभाषित करते हैं, अतः अधिक एवं गुणवत्तायुक्त फसलोत्पादन हेतु पोटाश का प्रयोग आवश्यक है, किसान भाई अपनी मृदा की जाँच कराकर वैज्ञानिकों द्वारा बताई गई पोटाश की मात्रा का अपनी फसलों में प्रयोग कर गुणवत्ता पूर्ण उत्पाद प्राप्त कर सकते है। यदि किसी कारण वश मृदा जाँच नहीं हो पाई है तो लेख में बताये गए लक्षण के आधार पर उचित पोटाशयुक्त उर्वरकों का प्रयोग कर सफल फसलोत्पादन कर लाभ कमाएं।

नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस के बाद पोटेशियम तीसरा प्रमुख आवश्यक पोषक तत्व है। जिसे प्रायः "गुणवत्ता पोषक तत्व" के रूप में परिभाषित करते हैं लगभग एक सौ साठ वर्ष पूर्व इस तत्व के कृषि में महत्व का पता चला था। पौधों एवं पशुओं दोनों के विकास हेतु यह आवश्यक है। धनायन के रूप में पौधों की जड़ों द्वारा यह अवशोषित होता है तथा स्वतन्त्र रूप से पौधों के अन्दर चलता रहता है। इसलिए इसे घोड़े वाला तत्व भी कहते हैं। पोटेशियम का रासायनिक प्रतीक (ज्ञ) जर्मन नाम कैलियम से लिया गया है। प्रायः सभी फसलों को पोटेशियम की आवश्यकता नत्रजन के बराबर होती है। यदि पोटेशियम की मृदा में कमी हो तो किसानों को पोटेशियम उर्वरक जैसे पोटेशियम सल्फेट एवं पोटेशियम क्लोराइड के द्वारा आपूर्ति करना चाहिए। फसल की जितनी अधिक उपज होगी उतनी ही अधिक पोटेशियम की आवश्यकता होगी। अवशोषित पोटेशियम का लगभग 70-75% पौधों के भूसे में एवं शेष भाग दानों में पाया जाता है। अपितु पोटाश पौधों के लिए अति आवश्यक पोषक तत्व है, परन्तु किसान द्वारा पोटाश को प्राथमिकता न दे कर अन्य मुख्य पोषक तत्वों को अधिक प्रयोग में लाया जाता है। भारतीय मृदा में वर्तमान में पोटाश की 50-60% कमी दखी गई है, वर्तमान समय में मुख्य पोषक तत्व जैसे नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश की मृदा में 8.5 मिलियन टन की कमी आंकी गई है। उर्वरकों के प्रयोग से कृषि उत्पादन में आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि हुई। उत्पादन में उर्वरकों का लगभग 50% योगदान है। फसलों द्वारा निष्कासित पोषक तत्वों की मात्रा को उर्वरकों द्वारा आपूर्ति की जाती है। परन्तु निष्कासित पोषक तत्वों की मात्रायें उर्वरकों द्वारा प्रदान की गई मात्रा से लगातार बढ़ती गयी। परिणामस्वरूप मृदा उर्वरता स्तर में लगातार गिरावट आती रही। टिकाऊ एवं अधिक उपज प्राप्त करने हेतु उर्वरकों का प्रयोग निष्कासित पोषक तत्वों के समतुल्य किया जाना चाहिए। हमारे देश की मृदा में पोटेशियम की मात्रा 1-1 टन प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त करने में ही समर्थ है। अधिक उपज (5-10 टन) प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त करने वाली फसलों के लिए मृदा में उपस्थित पोटेशियम असमर्थ है। पोटेशियम के मुख्य कार्यः पोटेशियम के बिना कोई भी फसल अपना जीवन चक्र पूरा नहीं कर सकता है, यह 60 से अधिक एन्जाइम को सक्रिय बनाता है। **पौधों के भीतर पोटेशियम का अधिकतर अंश स्वतन्त्र धनायन के रूप में चलता-फिरता रहता है पोटेशियम के मुख्य कार्य निम्न है-**

* प्रकाश संश्लेषण को प्रोत्साहित करता है। इस तरह यह कार्बोहाइड्रेट, वसा, तेल एवं प्रोटीन निर्माण में सहायक होता है।
* बीज, जड़, फल, कन्द आदि पौधों के भण्डारण अंगों तक पोटेशियम को प्रकाश संश्लेषण द्वारा पहुँचाने में मदद करता है।
* पौधों में शर्कराओं के निर्माण एवं स्थानान्तरण के लिए आवश्यक है, अतः गन्ना, चुकन्दर एवं सकरकन्द में इसका विशेष महत्व है।
* प्रोटीन की मात्रा पौधों में बढाता है। परिणामस्वरूप नाइट्रोजन की क्षमता में वृद्धि करने में सहायक होता है।
* कीड़े-मकोड़े, रोगों, सूखा एवं कोहरा आदि से बचाने में सहायक होता है।
* पौधों को गिरने से बचाता है।
* पौधों के जड़ों द्वारा जल अवशोषण को बढ़ाता है, परिणामस्वरूपः पानी की मात्रा में बचत होती है।
* पौधों की गुणवत्ता को बढ़ाता जिससे उसे अधिक दिनों तक बिना खराब हुए भण्डारित किया जा सकता है।
* आलू एवं टमाटर की कीपिंग गुण को बढ़ाता है।
* तम्बाकू, फल एवं रेशेदार वाली फसलों में पोटेशियम का विशेष महत्व है।
* तेल वाली फसलों में तेल वृद्धि में सहायक है।
* दलहनी फसलों में प्रोटीन की मात्रा को बढ़ाता है।
* प्रमुख पोषक तत्व नत्रजन एवं फास्फोरस की उपयोग क्षमता को बढाता है।

पोटेशियम का पौधों में कमी के लक्षणः

* पत्तियों का रंग गहरा हो जाना। * पौधों के विकास एवं वृद्धि में कमी। * पुरानी पत्तियों पर सफेद, पीला या नारंगी हरिमाहीन धब्बों या धारियों का दिखाई देना। * हरिमाहीन क्षेत्रों में उतकों का क्षय हो जाना। * पत्तियाँ सूख जाती हैं एवं उतक मर जाते हैं। * यह सारे लक्षण नई पत्तियों तक पहुँच जाते हैं। अतः अन्त में पौधे मर जाते हैं। * सूखा सहन करने की क्षमता में कमी आ जाती है। * जड़ों का उचित विकास नहीं हो पाता है। * यह लक्षण देखकर पौधों में पोटेशियम की कमी को पहचाना जा सकता है। परन्तु उचित होगा कि मृदा का परीक्षण कराकर बुआई से पूर्व ही परीक्षण के आधार पर पोटेशियम का उपयोग करें।

पोटेशियम का दूसरों पोषक तत्वों के साथ पारस्परिक क्रियाः

पोटेशियम एवं नाईट्रोजनः नाइट्रोजन पोटेशियम की पारस्परिक क्रिया धनात्मक है। अतः नाइट्रोजन के साथ पोटेशियम के प्रयोग करने पर नत्रजन की उपयोग क्षमता बढ़ती है। तथा अधिक नत्रजन की कुप्रभावों को पोटेशियम द्वारा कम करने में विशेष भूमिका है।

पोटेशियम एवं जिंकः दोनों में धनात्मक पारस्परिक क्रिया है, जिंक के साथ पोटेशियम के प्रयोग से 5-10 कुंटल आलू की उपज में वृद्धि प्राप्त हुई।

पोटेशियम एवं बोरानः धनात्मक पारस्परिक क्रिया है अतः दोनों के एक साथ प्रयोग करने पर दोनों की उपयोग क्षमता एवं फसल उत्पादन में वृद्धि हुई।

पोटेशियम एवं मैग्नीशियमः पोटेशियम का मैग्नीशियम के साथ ऋष्णात्मक (विरोधी) प्रतिक्रिया होती है। जब मृदा में पोटेशियम एवं मैग्नीशियम दोनों की माँग होती है परन्तु केवल पोटेशियम ही दिया जाता है तब पोटेशियम प्रेरित मैग्नीशियम की कमी उत्पन्न हो जाती है। गेहूँ, सरसों रोपी फसलों एवं सामान्यतः औद्योगिक फसलों में पोटेशियम एवं मैग्नीशियम के बीच ऋष्णात्मक (विरोधी) पारस्परिक क्रिया में अनुभव की गई है।

प्रमुख पोटाशयुक्त उर्वरक एवं उनके गुणः यह बात हमें जान लेनी चाहिए कि पोटाशवाले सम्पूर्ण उर्वरक भारत सरकार आयात करती है हमारे देश में पोटेशियम उर्वरक का उत्पादन नहीं होता। प्रमुख पोटाशयुक्त उर्वरकों में म्यूरेट आफ पोटाश (पोटेशियम क्लोराइड) है। इसमें 60~ ज्ञब्स पाया जाता है। पोटेशियम की कुल खपत का 99 प्रतिशत अंश म्यूरेट आफ पोटाश द्वारा पूरा होता है। अन्य पोटाशयुक्त उर्वरकों में पोटेशियम सल्फेट, पोटेशियम नाइट्रेट, पोटेशियम मैग्नीशियम सल्फेट है।

उर्वरक	रासायनिक सूत्र	पोटाश प्रतिशत
पोटेशियम क्लोराइड	KCl	60-62%
पोटेशियम सल्फेट	K_2SO_4	50-53%
पोटेशियम नाइट्रेट	KNO_3	44-46%
पोटेशियम मैग्नीशियम सल्फेट	$K^2SO^4.MgSO_4$	22%
	घुलनशील पोटाश उर्वरक	
13.45	इफ्फको ग्रेड	10.15 मिलीग्राम/ली. पानी में
19.19.19	इफ्फको ग्रेड	10.15 मिलीग्राम/ली. पानी में
00.52.34	इफ्फको ग्रेड	10.15 मिलीग्राम/ली. पानी में
जैव पोटाश	पूसा, दिल्ली	250 ग्राम/हे.

पोटाश उर्वरक प्रयोग करने की विधियां

* ऐसी जगह प्रयोग करें जहाँ से पौधों की जड़ें आसानी से अवशोषित कर सकें। जल वृद्धि एवं सिंचाई हो जाने पर सतह पर डाला गया पोटाश आसानी से पानी के साथ नीचे मूल क्षेत्र तक पहुँच सकता है और पौधों के उपयोग में आ जाता है। * सान्द्र उर्वरक को मिट्टी के साथ मिलाकर प्रयोग करना चाहिए। * मृदा सतह पर शुष्क पोटाष उर्वरक को एक साथ बिखेर देना चाहिए यह कार्य भूमि तैयारी के समय करना अधिक प्रभावकारी होता है। क्योंकि पोटाश उतनी गहराई तक पहुँच जाता है। जहाँ पौधों की जड़ें फैली होती हैं और इसे आसानी से अवशोषित कर सकती हैं। * उर्वरक को कतारों के ऊपर पट्टियों में बीज के साथ कतारों में बीज के नीचे एवं बगल में दिया जा सकता है। * फसल उगाने के कई सप्ताह बाद पट्टियों में प्रयोग करके गुडाई कर दें।

सब्ज़ियों में पोस्ट-हार्वेस्ट हानियों का मूल्यांकन तथा भंडारण चरण में होने वाली हानियों का विश्लेषण

डॉ. दिनेश रजक, डॉ. विशाल कुमार
डॉ. देवेन्द्र कुमार प्रसंसकरण एवं खाद्य अभियन्त्रिकी विभाग, कृषि अभियंत्रण एवं प्रौधोगीकी महविद्यालय, डॉ. रा. प्र. कें. कृ. वि. पूसा, समस्तीपुर, बिहार

परिचय: भारत विश्व के प्रमुख सब्ज़ी उत्पादक देशों में से एक है, लेकिन इसके बावजूद यहाँ सब्ज़ियों में कटाई-पश्चात (Post-harvest) हानियाँ 20-40% तक पाई जाती हैं। सब्ज़ियाँ अत्यधिक नाशवान (Perishable) होने के कारण कटाई, परिवहन, भंडारण और विपणन के दौरान इनकी गुणवत्ता और मात्रा दोनों में कमी आती है। इन हानियों को कम करने के लिए इनका सही मूल्यांकन (Assessment) तथा विश्लेषण (Analysis) अत्यंत आवश्यक है।

1. पोस्ट-हार्वेस्ट हानियों का महत्व- सब्ज़ियों में कटाई-पश्चात हानियाँ न केवल किसानों की आय कम करती हैं, बल्कि उपभोक्ताओं तक गुणवत्तापूर्ण और सस्ती सब्ज़ियाँ पहुँचने में भी बाधा बनती हैं। इसके अलावा, यह देश की खाद्य सुरक्षा पर भी प्रभाव डालती हैं। इसलिए पोस्ट-हार्वेस्ट हानियों का वैज्ञानिक मूल्यांकन और उचित भंडारण तकनीकों का उपयोग इस समस्या को कम कर सकता है।

2. पोस्ट-हार्वेस्ट हानियों का मूल्यांकन (Assessment of Post-Harvest Losses)Ñ- सब्ज़ियों तथा अन्य कृषि उत्पादों में कटाई-पश्चात होने वाली हानियों को पहचानने, मापने और विश्लेषित करने की प्रक्रिया को पोस्ट-हार्वेस्ट हानि का मूल्यांकन (Assessment of Post-Harvest Losses) कहा जाता है। इसका उद्देश्य यह पता लगाना है कि उत्पादन से उपभोग तक की श्रृंखला में किस चरण पर कितनी और किस प्रकार की हानि होती है, ताकि उन्हें कम करने के लिए उचित तकनीकों का चयन किया जा सके।

(a) मूल्यांकन के उद्देश्य

1.हानि के प्रकार और स्तर का पता लगाना 2.हानियों के कारणों की पहचान 3.वैज्ञानिक प्रबंधन उपाय सुझाना 4.नीति निर्माण और आपूर्ति श्रृंखला सुधार हेतु आंकड़े उपलब्ध कराना

(b) मूल्यांकन के प्रमुख मानदंड

1.मात्रात्मक हानि (Quantitative Loss)

* वजन में कमी * संख्या में कमी * शेल्फ-लाइफ कम होना

2.गुणवत्ता हानि (Qualitative Loss) * रंग, रूप व स्वाद में गिरावट * पोषक तत्वों की कमी * रोग व कीट संक्रमण

3.आर्थिक हानि (Economic Loss)

* बाज़ार मूल्य में कमी
* किसान और व्यापारी को आर्थिक नुकसान

(c) मूल्यांकन के प्रमुख चरण

* फसल कटाई * ढुलाई व परिवहन * बाजार में हैंडलिंग
* भंडारण * खुदरा विक्रय

3. भंडारण चरण में होने वाली हानियों का विश्लेषण: - सब्ज़ियाँ अत्यंत नाशवान (Perishable) होती हैं और कटाई के बाद इन्हें सुरक्षित रखने के लिए उचित भंडारण आवश्यक होता है। भंडारण चरण में वातावरण, तापमान, आर्द्रता, वेंटिलेशन, रोग-कीट तथा पैकिंग की वजह से कई प्रकार की हानियाँ होती हैं। इन हानियों का वैज्ञानिक विश्लेषण गुणवत्ता बनाए रखने, शेल्फ लाइफ बढ़ाने और आर्थिक नुकसान कम करने के लिए आवश्यक है। सब्ज़ियों का सही भंडारण उनकी शेल्फ-लाइफ बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गलत भंडारण से भारी क्षति हो सकती है। **भंडारण हानियाँ मुख्यत: निम्न प्रकार की होती हैं-**

(a) भौतिक / यांत्रिक हानियाँ (Physical Losses)

* वजन घटाव (Shrinkage)
* टूट-फूट या दबाव चोट
* पानी की कमी के कारण मुरझाना

इनका मुख्य कारण होता है अनुचित पैकिंग, खराब वेंटिलेशन और अधिक तापमान में संग्रहण।

(b) शारीरिक / फिजियोलॉजिकल हानियाँ (Physiological Losses)

* उच्च तापमान से तेज श्वसन क्रिया
* एनजाइमेटिक ब्राउनिंग
* अधिक नमी से सड़न

इन हानियों से गुण और पोषक तत्वों का तेजी से ह्रास होता है।

(c) रोगजनित हानियाँ (Pathological Losses)

* fungal संक्रमण (Rhizopus, Penicillium आदि)
* बैक्टीरियल सॉफ्ट रॉट
* कीटों द्वारा क्षति

ये हानियाँ अधिकांशतः अस्वच्छ भंडारण और उच्च आर्द्रता के कारण होती हैं।

(d) भंडारण प्रबंधन से संबंधित हानियाँ

* अनुचित तापमान
* अधिक या कम आर्द्रता
* खराब वेंटिलेशन
* गैसों (CO2, एथिलीन) का जमाव

सब्ज़ियों के प्रकार अनुसार भंडारण तापमान का वैज्ञानिक ज्ञान अत्यंत आवश्यक है।

4. भंडारण हानियाँ कम करने के उपाय

सब्ज़ियाँ अत्यधिक नाशवान होती हैं, इसलिए भंडारण के दौरान तापमान, आर्द्रता, वेंटिलेशन, रोगङ्कीट और अनुचित पैकिंग के कारण हानियाँ हो सकती हैं। इन हानियों को कम करने के लिए वैज्ञानिक और व्यावहारिक उपायों का पालन आवश्यक है।

(a) उचित तापमान और आर्द्रता नियंत्रण: - सब्ज़ियाँ अत्यधिक नाशवान (Perishable) होती हैं, इसलिए भंडारण के दौरान उनका ताज़ापन, गुणवत्ता और शेल्फ लाइफ बनाए रखने के लिए तापमान (Temperature) और आर्द्रता (Relative Humidity – RH) का वैज्ञानिक नियंत्रण आवश्यक होता है। तापमान और आर्द्रता का असंतुलन सड़न, सिकुड़न, पोषक तत्वों की कमी और रोगजनक वृद्धि का प्रमुख कारण बनता है।

* पत्तेदार सब्ज़ियां: 0-5°C
* टमाटर: 10-12°C
* आलू: 10-12°C
* प्याज: 25-30°C कम आर्द्रता में

(b) वैज्ञानिक भंडारण तकनीकें- सब्ज़ियों की शेल्फ लाइफ बढ़ाने, गुणवत्ता बनाए रखने तथा पोस्ट-हार्वेस्ट हानियों को कम करने के लिए वैज्ञानिक भंडारण तकनीकों का उपयोग आवश्यक है। पारंपरिक तरीकों की तुलना में ये तकनीकें तापमान, आर्द्रता, गैसों तथा वेंटिलेशन पर बेहतर नियंत्रण प्रदान करती हैं, जिससे सब्ज़ियाँ अधिक समय तक सुरक्षित रहती हैं।

* कोल्ड स्टोरेज
* नियंत्रित वातावरण भंडारण (Controlled Atmosphere – CA)
* परिवर्तित वातावरण पैकिंग (Modified Atmosphere Packaging – MAP)
* वाष्पीकरणीय शीत भंडारण (Evaporative cooling storage)

(c) ग्रेडिंग, पैकिंग एवं स्वच्छता: - कटाई के बाद सब्ज़ियों की गुणवत्ता बनाए रखने, भंडारण हानियाँ कम करने तथा बाजार मूल्य बढ़ाने के लिए ग्रेडिंग (Grading), पैकिंग (Packaging) और स्वच्छता (Sanitation) अत्यंत महत्वपूर्ण चरण हैं। इन विधियों के माध्यम से सब्ज़ियाँ सुरक्षित रहती हैं, परिवहन में कम क्षति होती है और उपभोक्ता को बेहतर गुणवत्ता का उत्पाद मिलता है।

* क्षतिग्रस्त सब्ज़ियाँ अलग करना
* वायुवाहक (Ventilated) क्रेट्स व पैकेजिंग
* साफ-सफाई व फफूंदनाशक उपचार

5. निष्कर्ष

सब्ज़ियों में पोस्ट-हार्वेस्ट हानियाँ भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए गंभीर समस्या हैं। इन हानियों का सही मूल्यांकन करके और भंडारण तकनीकों में सुधार लाकर उत्पादन से उपभोग तक की श्रृंखला को अधिक कुशल बनाया जा सकता है। उन्नत तकनीकें, जागरूकता, प्रशिक्षण तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाकर इन हानियों को काफी हद तक कम किया जा सकता है। इससे न केवल किसानों की आय बढ़ेगी, बल्कि उपभोक्ताओं को गुणवत्तापूर्ण सब्ज़ियाँ भी उपलब्ध होंगी।

दुग्ध पशुओं में गर्भपात : किसानों के लिए सरल मार्गदर्शन

डॉ. अमित खत्री, तन्मय मण्डल, गीतेश सैणी
दाऊद आमिर नेहरु, अनाविल भारद्वाज
सहायक आचार्य, पशु प्रसूति एवं मादा रोग विभाग, कॉलेज ऑफ वेटेरिनरी साइंस, गुरु अंगद देव वेटेरिनरी एंड एनिमल साइंसेस यूनिवर्सिटी, रामपुरा फूल, बठिंडा (पंजाब)-151103

परिचय

गर्भ धारण करने के 42 दिन के बाद से लेकर पूर्ण प्रसव से पहले मरे हुए या जीवन अक्षम बच्चे के बाहर निकलने को गर्भपात कहा जाता है। गर्भपात के विभिन्न कारण हो सकते है एवं यह अलग-अलग आयु वर्ग के पशुओ को प्रभावित कर सकता है। कुछ विशेष गर्भपात एक पशु से अन्य पशुओं में भी प्रसार कर सकते है, जिससे संक्रमित पशुओ की संख्या बढ़ जाती है। इसलिए यह डेयरी फार्म में आर्थिक रूप से बड़ी हानि का कारण बनता है। गर्भपात पशु के भविष्य की प्रजनन क्षमताओ को भी प्रभावित करता है एवं कुछ पशु जीवन भर के लिए बाँझ बन जाते है। इसलिए पशु पालको को गर्भपात जेसी समस्या को बहुत गंभीरता से समझना चाहिए तथा उचित चिकित्सक परामर्श लेना चाहिए।

गर्भपात के कारण

गर्भपात कई कारणों से हो सकता है जिन्हें तीन मुख्य समूहों में बांटा जाता है ।

(क) संक्रामक (Infectious causes)

* ब्रूसेलोसिस (Brucellosis): गाय/भैंस में 6-9 माह पर गर्भपात सामान्य।
* लैप्टोस्पायरोसिस (Leptospirosis): गाय/भैंस में 6-9 माह पर गर्भपात सामान्य।
* **साल्मोनेल्लोसिस (salmonellosis):** गाय/भैंस में 6-9 माह पर गर्भपात सामान्य।
* IBR (Infectious Bovine Rhinotracheitis): गाय/भैंस में 4-9 माह पर गर्भपात सामान्य।
* BVD (बोवाइन वायरल डायरिया): गाय/भैंस में 1-5 माह पर गर्भपात सामान्य।
* ट्राइकोमोनियासिसः गाय/भैंस में 1-3 माह पर गर्भपात
* विब्रिओसिसः गाय/भैंस में 1-3 माह पर गर्भपात

(ख) गैर-संक्रामक (Non-infectious causes)

* **पोषण की कमी-** कैल्शियम, फॉस्फोरस, आयोडीन, सेलेनियम की कमी।
* दुर्गंधित/फफूंदी युक्त चारा (Mycotoxins)
* अत्यधिक गर्मी/ठंड, यात्रा का तनाव, चोट लगना
* कठोर दवाइयाँ या हार्मोन का गलत उपयोग

(ग) प्रबंधन संबंधी कारण

* गंदी प्रसव/गायन प्रबंधन
* टीका न लगवाना
* संक्रमित पशुओं को झुंड में रखना

गर्भपात की पहचान (लक्षण)

* योनि से गाढ़ा, बदबूदार, पीला-लाल रंग का स्राव आना
* योनी से रक्त स्त्राव होना
* तेज बुखार, दूध उत्पादन अचानक कम होना
* भूख कम होना, कमजोरी
* बार-बार लेटना-बैठना, पेट में जोर लगना

कई बार लक्षण स्पष्ट नहीं होते, इसलिए नियमित गर्भ जांच महत्वपूर्ण है।

गर्भपात का प्रबंधन

गर्भपात की स्थिति में किसान को बहुत ही सावधानी बरतनी चाहिए, उचित और वैज्ञानिक प्रबंधन गर्भपात के फेलाव को रोकता है, तथा नुक्सान को कम करता है।

क्या करें

* पशु को भीड़ से अलग रखें (isolation)
* साफ़ और सूखा बिछौना दें
* नाल, भ्रूण या गंदगी को खुले में न फेंके – गड्ढा खोदकर चूना डालकर दबाएँ
* नमूने (placenta/fluids) पास के पशु चिकित्सक या लैब को भेजें * साफ पानी, इलेक्ट्रोलाइट और पोषक आहार दें

क्या न करें

* बिना दस्ताने के गर्भाशय के अंदर हाथ डालना
* भ्रूण को खुले में फेंकना–संक्रमण पूरे गाँव में फैल सकता है
* खुद से एंटीबायोटिक/हार्मोन देना

रोकथाम और नियंत्रण

बचाव उपचार से सदैव बेहतर विकल्प है, इसलिए पशु पालन का मुख्य आधार रोगों से बचाव पे होना चाहिए। उचित वैज्ञानिक प्रबंधन से दुधारू पशुओ में गर्भपात को कई हद तक रोका जा सकता है । इसके लिए पशु का उचित समय पे टीकाकरण (पशु चिकित्सक से), पशु को उचित खुराक देना, साफ़-सफ़ाई और प्रजनन प्रबंधन पे विशेष ध्यान देना चाहिए।

(क) टीकाकरण

बीमारी	वैक्सीन कब दें	टिप्पणी
ब्रूसेलोसिस	4-8 माह की बछियों को	आजीवन सुरक्षा
IBR	साल में एक बार	बड़े फार्मों में महत्वपूर्ण

(ख) पोषण प्रबंधन

* खनिज मिश्रण (Mineral mixture): 50 से 100 ग्राम रोज चारे में मिलाएँ
* बायपास प्रोटीन, विटामिन ADE, सेलेनियम गर्भावस्था में विशेष उपयोगी
* फफूंदी वाला भूसा/साइलिज बंद करें – मायकोटॉक्सिन गर्भपात का बड़ा कारण

(ग) सफाई और जैव सुरक्षा (Biosecurity)

* संक्रमित पशु को समूह से अलग रखें
* फार्म में फुटबाथ (सोडियम हाइपोक्लोराइट/फिनाइल) उपयोग करें
* नए पशु 30 दिन क्वारंटाइन में रखें
* गर्भपात के स्त्राव और जेर से अन्य पशुओ को बचाए
* नये पशु की खरीद पर ब्रूसेलोसिस का परीक्षण जरुर कराए

(घ) प्रजनन प्रबंधन * समय पर गर्भ परीक्षण (30-60 दिन पर) * अच्छी गुणवत्ता का वीर्य और प्रशिक्षित AI तकनीशियन

निष्कर्ष

गर्भपात आर्थिक नुकसान के साथ-साथ पुरे पशु समूह की सेहत के लिए गंभीर खतरा है। इसलिए सभी सावधानियों की पालना करनी चाहिए और संदेह होने पर तुरंत पशु चिकित्सक से संपर्क करें। गर्भपात की समस्या को हम सही पोषण, समय अनुसार टीकाकरण, उचित साफ़-सफाई एवं समय पर निदान करके नियंत्रित कर सकते है।

कुंज एजेंसीज

अपने भाई चप्पा सेठ की दुकान
हमारे यहां सभी प्रकार के खाद बीज एवं कीटनाशक दवाईयां उचित रेट पर मिलती है
प्रो. कार्तिक गुप्ता 9589545404
प्रो. हार्दिक गुप्ता 9644689094
भितरवार रोड, डबरा, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
10/2025-26

मध्य भारत कृषक भारती

5TH EDITION

15 16 17

FEBRUARY 2026

BHARAT MANDAPAM NEW DELHI

ORGANIC EXPO 2026

KNOWLEDGE • INNOVATION • TRANSFORMATION

THEME

SWADESHI TO GLOBAL: BUILDING A GREENER FUTURE

Organised By

namo gange
A JOURNEY TO HEALTHY WORLD...

In Association With

Natural
Nexus Network LLP

Postal Regd. No.: Gwalior/40020242/2025-27
R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946

मध्य भारत कृषक भारती

जनवरी -2026

KRUSHIPARV

INTERNATIONAL AGRICULTURE EXHIBITION AND CONFERENCE

05-08 Feb 2026

India's Premier International Agriculture
Exhibition And Conference

Nemane Estate, Kedgaon Rd, Ahilya Nagar, Maharashtra - 414005, India.

Soil to Soul : India's Green Power

BE there
BE seen

Scan Me

Organised By	Knowledge Partner	Media Partner	Associate Partner
EXPO INDIAN OCEAN PVT LTD ONE STEP FOR BUSINESS	TAURAN ADVISORS		GrowInAgri

www.krushiparva.org

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक राजू सिंह गुर्जर द्वारा कंचन ऑफसेट, चिंतामणि शास्त्री की गली, सात भाई की गोठ, लक्कडखाना,ग्वालियर, म.प्र.-474001 से मुद्रित
एवं ई.एम.-120, कुशवाह मार्केट के पास, दीनदयाल नगर, ग्वालियर, म.प्र.-474005 से प्रकाशित। संपादक : राजू सिंह गुर्जर (मोबा. 9425101132, 0751-4070802)